अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
दिसम्बर २०१९

अन्तरात्मा की खोज में

अग्निशिखा दिसम्बर २०१९ वर्ष ५०, अंक ५, पूर्णांक ५९२

विषय-सूची

अन्तरात्मा की खोज में
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय		३
अन्तरात्मा का अन्वेषण करना		५
चैत्य उद्‌घाटन		२२

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३४
मानवजाति को संकट में से उबारने का उपाय	नवजातजी	३७
"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४०
'योग के तत्त्व' : रूपान्तर	श्रीअरविन्द	४४
ये सभी अपने हैं	अर्चना माहेश्वरी	५०
सबकी सुध-बुध हर ली...	वन्दना	५५

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष–१८०रु.; तीन वर्ष–५२०रु.; पाँच वर्ष–८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

हृदय-शुद्धि के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ है, पूर्ण सच्चाई और निष्कपटता। दिखावा न करो, भगवान् से, अपने-आपसे या गुरु से कुछ न छिपाओ। अपनी गतिविधियों पर सीधी नज़र डालो और उन्हें ठीक करने का सीधा संकल्प करो। अगर इसमें समय लगे तो कोई बात नहीं है। भगवान् की खोज तुम्हारे सारे जीवन का कार्य है। आख़िर हृदय की शुद्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है और अगर तुम्हारे अन्दर ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें बदलना ज़रूरी है तो इसमें चिन्ता की, दुःख की या निराशा की कोई बात नहीं है। अगर तुम सच्चा संकल्प, सच्ची वृत्ति रख सको तो अन्दर से अन्तर्भास तथा सूचनाएँ पाते रहोगे, वे बढ़ती जायेंगी। वे ज़्यादा स्पष्ट, यथार्थ, निर्भ्रान्त होती जायेंगी और उनके अनुसार चलने की शक्ति भी तुम्हें मिल जायेगी और तुम अपने-आपसे सन्तुष्ट होओ उससे पहले भगवान् तुमसे सन्तुष्ट हो जायेंगे और वे उस परदे को धीरे-धीरे हटाना शुरू कर देंगे जो तुम्हारे और उनके बीच पड़ा हुआ है...।

—श्रीमाँ

सम्पादकीय : अगर हमें रूपान्तर की ओर बढ़ने का सबसे पहला और तात्कालिक क़दम उठाना है तो वह है—अपने अन्दर की चैत्य सत्ता का अन्वेषण करना। यह देवत्व मनुष्य की पहुँच में है। एक बार यह कर लिया जाये तो बाक़ी अपेक्षया आसान हो जाता है। इसी द्वार से होकर व्यक्ति सबसे आसानी से 'भागवत शक्तियों' तक पहुँच सकता और सूर्यालोकित पथ पर चल सकता है।

श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ द्वारा सुझाये विभिन्न पथों पर चल कर हम अपने चैत्य तक पहुँच सकते हैं।

हमारा यह अंक समर्पित है चैत्य सत्ता के अन्वेषण तथा आविर्भाव पर।

सब भावों से परे, हमारी सत्ता की नीरव और शान्त गहराइयों में एक प्रकाश सदा प्रकाशमान रहता है, यह है अन्तरात्मा की चेतना का प्रकाश। इस प्रकाश को खोजो, इस पर एकाग्र होओ; यह तुम्हारे अन्दर ही है। दृढ़ संकल्प के द्वारा तुम निश्चय ही यह प्रकाश पाओगे और ज्यों ही तुम उसमें प्रवेश पाओगे, त्यों ही तुम अमरता की अवस्था के प्रति जाग्रत् हो जाओगे। तुम अनुभव करोगे कि तुम सदा ही जीवित रहे हो और सदा ही जीवित रहोगे; उस अवस्था में तुम अपने शरीर से पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाते हो; तुम्हारा सचेतन अस्तित्व उस पर आश्रित नहीं रहता; और यह शरीर तो बहुत-से नाशवान् रूपों में से एक है जिनके द्वारा तुमने अपने-आपको अभिव्यक्त किया है। तब मृत्यु विनाश की अवस्था नहीं रहती, वह केवल संक्रमण की एक अवस्था हो जाती है। तत्काल ही समस्त भय भाग जाता है और तुम मुक्त पुरुष की शान्त निश्चयता के साथ जीवन में आगे बढ़ते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ ९२

अन्तरात्मा का अन्वेषण करना

हृदय में एकाग्र होओ

"इस योग में एकाग्र होने के सिवाय कोई और पद्धति नहीं है, ज़्यादा अच्छा है कि हृदय में एकाग्र होकर माताजी की सत्ता और शक्ति को पुकारो कि वे तुम्हारी सत्ता को ले लें और अपनी शक्ति की क्रिया से चेतना का रूपान्तर कर दें; तुम चाहो तो सिर में या भौंहों के बीच में भी एकाग्र हो सकते हो, परन्तु बहुतों के लिए यह उद्‌घाटन बहुत कठिन है।"—श्रीअरविन्द

माताजी, हृदय में एकाग्र होना क्यों ज़्यादा अच्छा है?

श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं कि यह ज़्यादा आसान है। कुछ लोगों के लिए यह ज़्यादा कठिन है, यह अपने-अपने स्वभाव पर निर्भर करता है। लेकिन यह ज़्यादा अच्छा है, क्योंकि अगर तुम वहाँ काफ़ी गहराई में एकाग्र होओ तो तुम यहाँ ही पहली बार में ही चैत्य पुरुष के सम्पर्क में आ जाओगे, जब कि सिर में एकाग्र होने से तुम्हें बाद में सिर में से हृदय में प्रवेश करना होगा ताकि चैत्य पुरुष के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सको। और अगर तुम शक्तियों को इकट्ठा करके एकाग्र करो तो यहाँ इकट्ठा करना ज़्यादा अच्छा है क्योंकि इसी चक्र में, सत्ता के इसी क्षेत्र में तुम प्रगति के संकल्प, शुद्धि की शक्ति और अधिक-से-अधिक तीव्र और समर्थ अभीप्सा पाओगे। जो अभीप्सा हृदय से आती है वह सिर से आने वाली अभीप्सा से कहीं ज़्यादा प्रभावकारी होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ ४३९

तुम योग-साधना किसलिए करना चाहते हो? शक्ति प्राप्त करने के लिए? शान्ति और स्थिरता की प्राप्ति के लिए? मानवजाति की सेवा के लिए? इनमें से कोई भी उद्देश्य यह बताने के लिए काफ़ी नहीं है कि तुम इस योग-मार्ग के लिए हो।

तुम्हें जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह यह है : क्या तुम भगवान् के लिए योग-साधना करना चाहते हो? क्या भगवान् ही तुम्हारे जीवन के परम

सत्य हैं, यहाँ तक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं सकते? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान् ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवन का कोई अर्थ नहीं है? यदि ऐसा हो तभी कहा जा सकता है कि तुम्हारे अन्दर योग-मार्ग के लिए पुकार है।

सबसे पहली आवश्यक चीज़ है, भगवान् के लिए अभीप्सा।

और दूसरी बात है, इस अभीप्सा को सतत बनाये रखना, उसे सदा जीवन्त, ज्वलन्त और जाग्रत् रखना। और इसके लिए जिस बात की आवश्यकता है वह है एकाग्रता—भगवान् पर एकाग्रता जो उनके 'संकल्प' और 'अभिप्राय' के प्रति पूर्ण और निरपेक्ष आत्म-समर्पण के भाव से की गयी हो।

हृदय-केन्द्र में अपने-आपको एकाग्र करो। हृदय में प्रवेश करो, उसके अन्दर जाओ, उसकी गहराई में उतरो और दूर तक, जितनी दूर तक तुम जा सको, जाओ। अपनी चेतना के बाहर बिखरे हुए सभी धागों को एकत्र कर लो, उन्हें समेट कर अन्दर डुबकी लगाओ और तह में जाकर बैठ जाओ।

वहाँ, हृदय की गभीर शान्ति में एक अग्नि धधक रही है। यही है तुम्हारे अन्तर में रहने वाले भगवान् का दिव्य अंश—तुम्हारी सत्य सत्ता (हृत्पुरुष)। इसकी आवाज़ सुनो और इसके आदेश का पालन करो।

एकाग्रता के लिए दूसरे केन्द्र भी हैं, उदाहरणस्वरूप, एक केन्द्र मस्तिष्क के ऊपर है (सहस्रार), दूसरा भ्रू-मध्य में है (आज्ञा)। इनमें से हर एक का अपना प्रभाव है और हर एक किसी परिणाम पर पहुँचता है। परन्तु केन्द्रीय पुरुष का स्थान हृदय है और हृदय से ही सब केन्द्रीय प्रवृत्तियाँ निकलती हैं—यहीं से रूपान्तर के लिए समस्त गतिशीलता और लगन एवं आत्मदर्शन करने की शक्ति निकलती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ३-४

स्वेच्छा से कामना को छोड़ना

चैत्य सत्ता के साथ एक तरह का आन्तरिक सम्पर्क होता है, वह तब पैदा होता है जब व्यक्ति स्वेच्छा से किसी कामना को छोड़ देता है। और इसी कारण, वह कामना की तुष्टि की अपेक्षा इसमें कहीं अधिक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर, लगभग एक सामान्य नियम के रूप में, प्रायः

बिना किसी अपवाद के, जब तुम किसी कामना को तुष्ट कर लेते हो, तो हमेशा कहीं-न-कहीं एक प्रकार का कड़वा स्वाद रह जाता है।

ऐसी कोई कामना नहीं जो सन्तुष्ट होने पर एक प्रकार की कटुता न छोड़े। जैसे, अगर तुम बहुत मीठी मिठाई खा लो तो तुम्हारा मुँह कड़वाहट से भर जाता है। यह ऐसा ही है। तुम्हें सच्चाई के साथ प्रयास करना चाहिये। स्वाभाविक है कि कामना त्यागने का ढोंग करके उसे एक कोने में छिपाये न रखो, क्योंकि इससे बहुत दुःख होता है। तुम्हें सच्चाई और निष्कपटता के साथ प्रयास करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४३

मन तथा अन्तरात्मा

मन रूप देने का और व्यवस्था करने का यन्त्र है, और अगर मन चैत्य को अपना उपयोग करने दे तो बहुत अच्छा होगा। लेकिन मन चैत्य को अभिव्यक्त होने में सहायता नहीं देगा। भूमिकाएँ उलटी हैं। बाद में चल कर जब चैत्य सत्ता बाह्य चेतना पर अधिकार पा चुकेगी तो मन चैत्य की अभिव्यक्ति का एक यन्त्र बन सकेगा। इसका पहले होना बहुत ही विरल है। साधारणतः, वह एक परदा और रुकावट होता है। लेकिन, निश्चय ही, वह अभिव्यक्ति में सहायक नहीं हो सकता। अगर वह सच्चा स्थान और सच्ची गतिविधि अपनाये तो क्रिया में सहायक हो सकता है। और अगर वह चैत्य प्रेरणा के प्रति बिलकुल विनीत बन जाये, तो वह जीवन को व्यवस्थित करने में सहायक हो सकता है, क्योंकि यही उसका काम है, यही उसका उद्देश्य है। लेकिन पहले ज़रूरत इस बात की है कि चैत्य सत्ता क्षेत्र पर अधिकार कर ले, कि वह गृहस्वामी बन जाये। तब, उसके बाद, चीज़ें व्यवस्थित हो सकती हैं।

बाह्य सत्ता के लिए केवल एक ही तरीक़ा है। हम भौतिक सत्ता को लें—भौतिक सत्ता, बेचारी, छोटी-सी भौतिक सत्ता, बाह्य सत्ता, जो कुछ नहीं जानती, जो अपने-आप कुछ नहीं कर सकती। उसके लिए चैत्य सत्ता को अपने अन्दर अभिव्यक्त करने देने का बस, एक ही तरीक़ा है : एक बच्चे की सरल ऊष्मा के साथ *(माताजी बहुत धीमे बोलती हैं)* अभीप्सा करना, प्रार्थना करना, माँगना, अपनी सारी शक्ति के साथ चाहना, बिना

तर्क किये, बिना समझने का प्रयास किये, चाहना। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि तर्क और समझने का यह प्रयास अनुभूति में कितने बाधक होते हैं। जिस क्षण तुम निश्चित रूप से ऐसी स्थिति पाने-पाने को हो जहाँ कुछ होने वाला है, सत्ता की चेतना में कुछ स्पन्दन बदलेंगे... तुम एक अभीप्सा में पूरी तरह उठे हुए हो और तुम अपनी अभीप्सा को संलग्न करने में सफल हो गये हो, और तुम उत्तर की प्रतीक्षा में आतुर खड़े हो, उस समय अगर यह कम्बख़्त मन अस्थिर हो उठे और पूछे : "यह क्या हो रहा है, क्या होने वाला है, वह कब होगा, वह कैसे होगा, और ऐसा क्यों है, और चीज़ें किस क्रम में अभिव्यक्त होंगी?" तो बस, ख़तम। तुम उठ कर अपने कमरे में झाड़ू लगा सकते हो, तुम किसी और चीज़ के लायक नहीं हो। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४४-४५

अन्तर्मुख होकर चैत्य को पाना

मधुर माँ, "भौतिक सत्ता में चैत्य के खुलने" का क्या अर्थ है?

... तुम चेतना के हर भाग के द्वारा चैत्य को पा सकते हो : तुम भौतिक चेतना के पीछे चैत्य को पा सकते हो... तुम सीधे भौतिक चेतना के द्वारा, सीधे प्राणिक चेतना के द्वारा, सीधे मानसिक चेतना के द्वारा चैत्य से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो। ऐसी बात नहीं है कि चैत्य को पाने के लिए सत्ता की सभी अवस्थाओं को पार करना पड़े। अपनी भौतिक चेतना को छोड़े बिना तुम चैत्य सत्ता में अन्तर्मुख होकर प्रवेश कर सकते हो, क्योंकि यह कोई आरोहण या अनुक्रम नहीं है। यह अन्तर्मुख होना है। सत्ता की अन्य अवस्थाओं में से गुज़रे बिना भी सीधे अन्तर्मुख हुआ जा सकता है। श्रीअरविन्द यही कहना चाहते हैं : तुम भौतिक चेतना में हो, कोई चीज़ तुम्हें इस भौतिक चेतना को चैत्य चेतना की ओर खोलने से नहीं रोकती, चैत्य के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए तुम्हें प्राणिक या मानसिक रूप में विकसित होने की या उन अवस्थाओं की ओर लौटने की आवश्यकता नहीं है। तुम सीधे चैत्य में प्रवेश कर सकते हो। चैत्य तुम्हारी भौतिक सत्ता में, दूसरी अवस्थाओं में से गुज़रे बिना सीधा प्रकट होता है; इसका यही अर्थ है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ८२

प्रारम्भिक चरण

प्रारम्भ में मनुष्य को अपने अन्दर उस चीज़ की खोज करनी होगी जो शरीर और जीवन की परिस्थितियों से स्वतन्त्र है, जिसका जन्म न तो उस मानसिक रचना से हुआ है जो उसे प्राप्त हुई है, न उस भाषा से जो वह बोलता है, न उस वातावरण के अभ्यासों तथा रीति-रिवाजों से जिसमें वह रहता है और न ही उस देश से जिसमें वह उत्पन्न हुआ है या उस युग से जिससे उसका सम्बन्ध है। उसे, अपनी सत्ता की गहराई में उस वस्तु को ढूँढ़ना होता है जिसके अन्दर विश्वव्यापकता, असीम विस्तार तथा अबाधित निरन्तरता का भाव है। तब वह अपने-आपको केन्द्र से बाहर की ओर प्रसारित करता है, विशाल और व्यापक बनाता है; प्रत्येक वस्तु में तथा सब प्राणियों में निवास करने लगता है; व्यक्तियों को एक-दूसरे से पृथक् करने वाले बाँध टूट जाते हैं। वह उनके विचारों में सोचता है, उनके संवेदनों से स्पन्दित होता है, उनकी भावनाओं में अनुभव करता है, सबके जीवन में जीता है। जो जड़ प्रतीत होता था, वह एकाएक जीवन से थिरक उठता है, पत्थर स्पन्दित हो उठते हैं, पौधे संवेदन, इच्छा तथा दुःख अनुभव करने लगते हैं, पशु एक मूक-सी, पर स्पष्ट और व्यञ्जक भाषा में बोलने लगते हैं; सब वस्तुएँ एक ऐसी अद्‌भुत चेतना से सजीव हो उठती हैं जो देश और काल से परे है। यह आन्तरात्मिक उपलब्धि का केवल एक पक्ष है; इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से हैं। ये सब मिल कर तुम्हारे अहंभाव की सीमाओं से तथा तुम्हारे बाह्य व्यक्तित्व की दीवारों से, तुम्हारी प्रतिक्रियाओं की असमर्थता और तुम्हारे संकल्प की दुर्बलता से ऊपर उठने में तुम्हारी सहायता करते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ ३८

कुछ मौलिक चरण

पहली और शायद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मन आध्यात्मिक वस्तुओं के विषय में राय बनाने में असमर्थ है। जिन लोगों ने भी इस विषय पर लिखा है वे सब यही कहते हैं; पर बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इस पर आचरण करते हैं। फिर भी, इस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए सब प्रकार की मानसिक धारणाओं और प्रतिक्रियाओं से बचना सर्वथा अनिवार्य है।

आराम, सन्तुष्टि, सुख-भोग या प्रसन्नता के लिए हर प्रकार की वैयक्तिक कामना का त्याग कर दो। बस, उन्नति के लिए प्रज्वलित अग्निशिखा बन जाओ। जो कुछ तुम्हारे मार्ग में आये उसे अपने विकास के लिए मानो और तुरन्त इस अपेक्षित विकास को साधित भी कर लो।

जो भी करो उसे आनन्द से करने का यत्न करो परन्तु आनन्द कभी तुम्हारे कार्य का प्रेरक भाव न बनने पाये।

कभी उत्तेजित, उद्विग्न या विक्षुब्ध मत होओ, सभी परिस्थितियों में पूर्ण रूप से शान्त बने रहो। फिर भी सदा सजग रहो ताकि जो उन्नति तुम्हें करनी है उसे तुम जान सको तथा बिना समय नष्ट किये उसे प्राप्त कर सको।

भौतिक घटनाओं को उनके बाह्य रूपों के आधार पर स्वीकार मत करो। ये सदा ही किसी अन्य वस्तु को, जो सत्य वस्तु है, परन्तु जो हमारी तलीय बुद्धि की पकड़ में नहीं आती, अभिव्यक्त करने का बेढंगा प्रयास होती हैं।

किसी के व्यवहार के प्रति शिकायत मत करो, जब तक तुम्हारे अन्दर उसके स्वभाव की उस चीज़ को बदलने की शक्ति ही न हो जो उसे वैसा करने को प्रेरित करती है; अगर तुम्हारे पास वह शक्ति है तो शिकायत करने के स्थान पर उसे बदल दो।

तुम जो भी करो, अपने लिए निर्धारित किये हुए लक्ष्य को सदा स्मरण रखो। इस महान् उपलब्धि की खोज में कोई भी चीज़ बड़ी या छोटी नहीं है; सब समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, ये इसकी सफलता में सहायता भी पहुँचा सकती हैं और बाधा भी डाल सकती हैं। जैसे भोजन से पहले तुम इस अभीप्सा पर कुछ क्षण अपना ध्यान एकाग्र करो कि जो खाना तुम खाने वाले हो वह तुम्हारे शरीर के लिए उस प्रयोजनीय तत्त्व को पैदा करे जो इस महान् उपलब्धि के लिए तुम्हारे प्रयत्न का ठोस आधार बनेगा तथा उसे इस प्रयत्न में सहनशीलता और अध्यवसाय की शक्ति प्रदान करेगा।

सोने से पहले, तुम कुछ क्षण के लिए एकाग्र होकर अभीप्सा करो कि यह निद्रा तुम्हारी थकी हुई नसों को पुनः शक्ति प्रदान करे, तुम्हारे मस्तिष्क में स्थिरता और शान्ति लाये, ताकि सोकर उठने के बाद तुम नये उत्साह के साथ इस महान् उपलब्धि की ओर अपनी यात्रा को फिर से आरम्भ कर सको।

कुछ भी करने से पहले, इस इच्छा-शक्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करो कि तुम्हारा कार्य इस महान् उपलब्धि की ओर अग्रसर होने में तुम्हें

सहायता पहुँचाये, कम-से-कम किसी भी तरह बाधक तो न बने।

जब तुम बोलो, तो मुख से शब्द निकालने से पहले कम-से-कम इतनी देर तो अपने-आपको एकाग्र कर लो कि तुम्हारा शब्दों पर नियन्त्रण रहे और केवल वे ही शब्द मुख से निकलें जो अनिवार्य रूप में आवश्यक हैं, केवल वे ही जो इस महान् उपलब्धि की ओर अग्रसर होने में किसी प्रकार भी बाधक नहीं हैं।

संक्षेप में, अपने जीवन के प्रयोजन और लक्ष्य को कभी मत भूलो। इस महान् उपलब्धि के लिए तुम्हारा संकल्प सदा तुम्हारे ऊपर तथा जो कुछ तुम करते हो और जो कुछ तुम हो उस पर सदा विद्यमान रहे मानों यह प्रकाश का एक विशाल पक्षी है जो तुम्हारे अस्तित्व की सभी गतिविधियों पर छाया रहता है। तुम्हारे अथक और सतत प्रयत्न के फलस्वरूप सहसा एक आन्तरिक द्वार खुल जायेगा और तुम एक ऐसी ज्वलन्त ज्योति में प्रवेश करोगे जो तुम्हें अमरता का आश्वासन प्रदान करेगी तथा स्पष्ट अनुभव करायेगी कि तुम सदा ही जीवित रहे हो और सदा ही जीवित रहोगे; नाश बाह्य रूपों का ही होता है और अपनी वास्तविक सत्ता के सम्बन्ध से तुम्हें यह भी पता लगेगा कि ये रूप वस्त्रों के समान हैं जिन्हें पुराने पड़ जाने पर फेंक दिया जाता है। तब तुम सब बन्धनों से मुक्त सीधे खड़े हो जाओगे और परिस्थितियों के जिस बोझ को 'प्रकृति' ने तुम पर लादा है तथा जिसे वहन करते हुए तुम कष्ट भोग रहे हो, उसके नीचे कठिनाई से अग्रसर होने के स्थान पर तुम—यदि इसके नीचे कुचल जाना नहीं चाहते हो तो—अपनी भवितव्यता के प्रति सचेतन होकर तथा जीवन के स्वामी बन कर सीधे, दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने-योग्य हो सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ ३९-४१

अचानक कपाट खुल जाते हैं

एक बन्द दरवाज़े के आगे ध्यान में बैठना, मानों वह काँसे का बहुत भारी दरवाज़ा हो—और तुम उसके सामने इस संकल्प के साथ बैठते हो कि वह खुल जाये—और तुम उसके पार दूसरी ओर चले जाओ; तो सारी एकाग्रता, सारी अभीप्सा एक किरण के रूप में इकट्ठी हो जाती है और धक्का देती है, धक्का देती है और दरवाज़े को धक्का देती है, अधिकाधिक

बढ़ती हुई ऊर्जा के साथ धक्का देती है, यहाँ तक कि अचानक कपाट खुल जाते हैं, और तुम अन्दर प्रवेश करते हो। इसका बड़ा ज़बरदस्त असर पड़ता है और इसलिए ऐसा लगता है मानों तुमने प्रकाश में डुबकी लगायी हो और तब तुम्हें चेतना के सहसा तथा आमूल परिवर्तन का पूरा आनन्द मिलता है, एक ऐसा प्रकाश मिलता है जो तुम्हें पूरी तरह अभिभूत कर लेता है, और तुम्हें लगता है कि तुम एकदम से अलग ही व्यक्ति बन रहे हो। और यह अपनी चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क में आने के लिए बहुत ठोस और बहुत सशक्त मार्ग है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ २९९-३००

चैत्य अनुशासन

इस साधना का जहाँ से आरम्भ होता है उसे हम चैत्य साधना कह सकते हैं। हम अपनी सत्ता की अन्तश्चेतना के केन्द्र को, अपने जीवन के उच्चतम सत्य के आन्तर धाम को "चैत्य" नाम से पुकारते हैं, यही वह केन्द्र है जो इस सत्य को जान सकता है और अभिव्यक्त कर सकता है। अतएव, हमारे लिए सबसे प्रधान महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम अपने अन्दर इसकी उपस्थिति के ऊपर ध्यान एकाग्र करें जब तक कि यह हमारे लिए एक जीवन्त सत्य न बन जाये और इसके साथ हम अपना तादात्म्य स्थापित न कर लें।

इस सचेतनता को प्राप्त करने के लिए और अन्त में इस तादात्म्य को सिद्ध करने के लिए विभिन्न देशों और युगों में बहुत-सी पद्धतियाँ निश्चित की गयी हैं। कुछ पद्धतियाँ मनोवैज्ञानिक हैं, कुछ धार्मिक हैं और कुछ यान्त्रिक भी हैं। सच पूछा जाये तो प्रत्येक मनुष्य को वह पद्धति ढूँढ़ निकालनी होगी जो उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो, और अगर साधक में तीव्र और अकम्प अभीप्सा हो, अटूट और सक्रिय संकल्प-शक्ति हो तो यह निश्चित है कि वह एक-न-एक तरीक़े से—बाहर से अध्ययन और उपदेश के द्वारा, अन्दर से एकाग्रता, ध्यान, अन्तर्दर्शन तथा अनुभव के द्वारा — उस सहायता को अवश्य पायेगा जो लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसके लिए आवश्यक है। केवल एक ही चीज़ है जो पूर्ण रूप से अनिवार्य

है और वह है, उसे खोज निकालने और प्राप्त करने का संकल्प। यह खोजने और प्राप्त करने का प्रयास ही हमारी सत्ता का सबसे पहला कार्य होना चाहिये, यही वह बहुमूल्य मोती है जिसे हमें चाहे किसी भी मूल्य पर प्राप्त करना चाहिये। तुम चाहे जो कुछ करो, तुम्हारा व्यवसाय और कार्य जो भी हो, अपनी सत्ता के सत्य को पाने और उसके साथ युक्त होने का तुम्हारा संकल्प हमेशा जीवन्त बना रहना चाहिये, जो कुछ तुम करते हो, जो कुछ तुम अनुभव करते हो और जो कुछ तुम विचार करते हो, उस सबके पीछे उसे सदा विद्यमान रहना चाहिये।

आन्तरिक खोज की इस क्रिया को पूरा करने के लिए यह अच्छा है कि मानसिक विकास की उपेक्षा न की जाये। क्योंकि हमारा मनोमय यन्त्र जैसे हमारा बहुत बड़ा सहायक हो सकता है उसी तरह बहुत बड़ा बाधक भी। अपनी सबसे स्वाभाविक स्थिति में मानव-मन हमेशा अपनी दृष्टिमें सीमित होता है, अपनी समझ में संकीर्ण और अपनी परिकल्पनाओं में कठोर। अतः, इसे विशाल, गभीर और नमनीय बनाने के लिए सतत प्रयास की आवश्यकता होती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि मनुष्य प्रत्येक बात पर जितने दृष्टिकोण से विचार करना सम्भव हो उतने दृष्टिकोणों से विचार करे। इस विषय से सम्बन्धित एक अभ्यास ऐसा है जो विचार में बहुत अधिक नमनीयता और ऊँचाई ला देता है। वह इस प्रकार है : स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया एक प्रतिपाद्य मत सामने रख देना चाहिये, फिर उसके मुक़ाबिले में उसका विरोधी मत भी ला उपस्थित करना चाहिये जो वैसी ही सूक्ष्मता के साथ प्रकट किया गया हो। फिर, सावधानी के साथ सोचते-विचारते हुए उस समस्या को विस्तारित करना चाहिये अथवा उसका अतिक्रमण करना चाहिये ताकि एक ऐसा समन्वय प्राप्त हो जाये जो उन अत्यन्त विरोधी मतों को एक विशालतर, उच्चतर और अधिक व्यापक भावना के अन्दर युक्त कर दे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ ५-६

चैत्य अग्नि को प्रज्वलित करना

मधुर माँ, श्रीअरविन्द लिखते हैं: "अपने अन्दर चैत्य अग्नि को प्रज्वलित रखना होगा जिसमें सब कुछ भगवान् के नाम के साथ होम कर दिया जाता है।"

(श्रीअरविन्द, 'योग-समन्वय')

क्या चैत्य अग्नि सदा प्रज्वलित नहीं होती?

वह सर्वदा प्रज्वलित नहीं होती।

तो फिर उसे कैसे प्रज्वलित किया जाये?

अभीप्सा के द्वारा।

प्रगति करने के संकल्प के द्वारा, पूर्णता-प्राप्ति की उत्कण्ठा के द्वारा।

सबसे बढ़ कर, प्रगति करने का और अपने-आपको शुद्ध करने का संकल्प ही उस अग्नि को प्रज्वलित करता है। प्रगति का संकल्प। जिन लोगों में प्रबल संकल्प-शक्ति होती है, वे जब इसे आध्यात्मिक प्रगति और शुद्धि की ओर मोड़ते हैं तो उनके अन्दर वह अग्नि अपने-आप प्रज्वलित हो उठती है।

और प्रत्येक दोष को, जिसे तुम सुधारना चाहते हो या प्रत्येक प्रगति को जिसे तुम करना चाहते हो,—यदि उस सबको तुम अग्नि में झोंक देते हो तो वह एक नयी तीव्रता के साथ जल उठती है। यह कोई निरा रूपक नहीं है, यह सूक्ष्म-भौतिक जगत् का एक तथ्य है। तुम उस लौ की ऊष्मा को अनुभव कर सकते हो, तुम सूक्ष्म-भौतिक जगत् में उस लौ की ज्योति को देख सकते हो। और, जब तुम्हारी प्रकृति में कोई ऐसी चीज़ होती है जो तुम्हें आगे बढ़ने से रोकती है और तुम उसे उस अग्नि में होम कर देते हो तो वह जलना आरम्भ कर देती है और लौ अधिक तेज़ हो जाती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ ३०४

अभीप्सा तथा चैत्य सत्ता

अभीप्सा प्रायः हमेशा ही चैत्य सत्ता की एक अभिव्यक्ति होती है—हमारे अन्दर के उस भाग की जो भागवत केन्द्र के चारों ओर संगठित रहता है, वह होती है एक नन्हीं-सी भागवत ज्वाला जो मनुष्यों के अन्दर, गहराई में प्रज्वलित रहती है। देखो वत्स, यह भागवत ज्वाला प्रत्येक मनुष्य में उपस्थित होती है, और धीरे-धीरे क्रमशः, कई जन्मों, कर्मों इत्यादि में से होती हुई, उस ज्वाला के चारों ओर एक सत्ता आकार लेने लगती है जिसे 'तेओं' "चैत्य सत्ता" कहा करते थे। और जब चैत्य सत्ता पूरी तरह से विकसित हो जाती है तो वह एक तरह से शरीर धारण कर लेती है, बहरहाल, वह अन्तरात्मा का व्यक्तिगत परिधान तो पहन ही लेती है। अन्तरात्मा 'परम प्रभु' का ही एक हिस्सा है—वस्तुतः, जीव वैयक्तिक रूप में 'परम' ही है। और चूँकि एकमेव 'परम' हैं, तो केवल एक ही जीव है, लेकिन जिसने लाखों वैयक्तिक रूप ले रखे हैं। यह जीव भागवत चिनगारी के रूप में प्रकट होता है—अक्षर, शाश्वत और साथ ही अनन्त (आयाम में नहीं बल्कि सम्भावना में अनन्त)। और अपने सभी जन्मों में, उसने जब-जब भागवत प्रभाव को स्वीकार किया और उसका प्रत्युत्तर दिया तब-तब क्रमशः सब कुछ जीव के चारों ओर निश्चित रूप लेता रहता और अधिकाधिक सचेतन और साथ-साथ अधिकाधिक संगठित होता रहता है। और अन्त में वह जीव अपने बारे में पूरी तरह सचेतन होकर एक वैयक्तिक सत्ता बन जाता है, जो अपनी स्वामिनी होती है और ऐकान्तिक रूप से भागवत 'इच्छा' का अनुसरण करती है। यानी, तब वह 'परम प्रभु' की वैयक्तिक अभिव्यक्ति बन जाती है। इसे ही हम "चैत्य सत्ता" कहते हैं।

२५ जुलाई १९६२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

मैं करके रहूँगा

सबसे अच्छा तरीक़ा है—चिन्ता मत करो, विक्षुब्ध या उदास मत होओ (हताश होना तो सबसे बुरी चीज़ है), उत्तेजित, अधीर या विरक्त न हो उठो—बस शान्त रहो और कहो, "समय के साथ-साथ मैं सचेतन बनता जाऊँगा, सचेतनता आयेगी, आकर रहेगी।" और तुम्हें इसमें लगे रहना होगा, एक ज़िद्दीपन के साथ सचेतन बनने के प्रयास में डटे रहना होगा।

तुम्हें जो ठीक लगे, जो कार्य तुम्हें करना चाहिये उसमें जुटे रहो, भले उसका परिणाम तुम्हें बहुत समय तक न दीखे।

लेकिन, काश! मेरे पास कोई तरीक़ा होता!

बहुत से तरीक़े हैं—कई किताबें हैं। मैं उनमें से किसी का अनुसरण करने के लिए तुमसे न कहूँगी; वह हमेशा लेखक का अपना तरीक़ा होता है। सचेतन बनने के लिए हर एक को अपना तरीक़ा ढूँढ़ना होगा।

व्यक्ति को कुछ संकेत मिल सकते हैं, वह अपना तरीक़ा ख़ुद खोज सकता है।

लेकिन करना होगा स्वयं तुमको... देखो, जप के लिए भी वही बात लागू होती है। तुम्हें कोई नाम-जप दिया जाता है। तुम उसे अपनाते हो (हाँ, अगर तुम अपने-आप अपना सच्चा जप खोज लो तो अलग बात है, लेकिन यह कठिन है, इसके लिए सिद्धि के एक अधिक ऊँचे स्तर की आवश्यकता होती है); तुम्हें गुरु कोई नाम-जप देते हैं, साथ ही साथ उसे करने की शक्ति भी प्रदान करते हैं—लेकिन तुम्हें उसे करना सीखना होगा, होगा न? बहुत समय तक तुम पूरी तरह से सफल नहीं हो पाओगे; कई तरह की चीज़ें होती हैं—जप करते-करते तुम कुछ और सोचने लगते हो, जप करना भूल जाते हो, बीच ही में सो जाते हो, या थक जाते हो, सिरदर्द होने लगता है—पचासों बातें हो सकती हैं; यहाँ तक कि बाहरी परिस्थितियाँ विघ्न-बाधा डाल कर तुम्हें परेशान कर सकती हैं। हाँ तो, सचेतन बनने के लिए भी यही बात है : तुम अपने-आपसे कहो, "मैं सचेतन बन कर रहूँगा," और तुम इसे सम्पन्न कर लोगे, भले... तुम्हें गधे की तरह इसमें जुटे ही क्यों न रहना पड़े : भले तुम्हारे पथ पर रोड़ों का पहाड़ खड़ा हो जाये, लेकिन बढ़े चलो, बढ़े चलो। एक बार तुमने इसका बीड़ा उठा लिया तो बस चलते चलो। अपने मूल-मन्त्र से चिपके रहो—"परिणाम आये, न आये, मुझे परवाह नहीं, भले सब कुछ मेरे विरोध में उठ खड़ा हो, मुझे कोई परवाह नहीं। मैंने एक बार कह दिया कि मैं अपना जीवन सचेतन बन कर जिऊँगा तो जी कर रहूँगा।" और तुम इसी तरह अपने पथ पर अड़े रहो।...

५ सितम्बर १९६२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

ज़िद्दी बनो

तुम्हें ज़िद्दी बनना होगा—अड़ियल, हठीला, ज़िद्दी। तुम्हें निश्चेतना तथा अज्ञान के हर प्रतिरोध का डट कर सामना करना होगा, निश्चेतना के प्रत्येक पहलू, अज्ञान के हर स्तर का सामना करने का साहस रखना होगा—यह ऐसी चीज़ है जो बहुत ही हठीली होती है, जिसे झुकाना पहाड़ तोड़ने-जैसा होता है। लेकिन यह है, पहाड़ पर निरन्तर पड़ती बूँद की कहानी : बस समय की बात है। अन्ततोगत्वा पानी शिला पर गिरते-गिरते उसके आर-पार हो ही जाता है। इसमें युग लग सकते हैं, लेकिन अन्त में वह शिला में छेद बना कर ही रहता है, क्योंकि बूँद पर बूँद, लगातार वह एक ही जगह पर गिरता ही रहता है, और तुम्हारी सत्ता के नीचे तो एक चौड़ी नदी बह रही है। अनुकरण करने के लिए प्रकृति हमें कितने भव्य उदाहरण देती है। तो बात बस इतनी है : हमें चट्टान पर गिरती हुई बूँदों के समान बनना चाहिये।

५ सितम्बर १९६२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

भगवान् के प्रति अदमनीय आकर्षण

ऐसे लोग हैं जिनमें चैत्य गतिविधि, भावमय आवेग बौद्धिक समझ से ज़्यादा सशक्त होते हैं। वे बिना जाने भगवान् के लिए अदमनीय आकर्षण का अनुभव करते हैं, उन्हें ज़रा भी ख़याल तक नहीं होता कि वह है क्या, वह क्या हो सकता है, वह किसका प्रतीक है—कुछ भी नहीं, कोई बौद्धिक धारणा नहीं होती—किन्तु उनमें एक प्रकार का आवेग, आकर्षण, एक आवश्यकता, अनिवार्य आवश्यकता होती है।

और ऐसे लोग जिनमें यह चीज़ होती है—अगर मैं कहूँ कि यह 'कृपा' के परिणामस्वरूप होती है—उनका मन ऐसा होता है जो उन्हें कष्ट नहीं देता, जो प्रश्न नहीं करता, बहस नहीं करता, वे बड़ी तेज़ी से बढ़ते हैं।

और फिर, जो चीज़ साधारण विचारों के अनुसार बिलकुल चमत्कारी है वह यह कि जैसे ही वे आत्म-निवेदन के उस स्तर तक पहुँच जाते हैं जहाँ वे अपनी चैत्य सत्ता द्वारा 'भागवत उपस्थिति' के साथ तादात्म्य पा लेते हैं, वैसे ही अचानक उनके अन्दर अभिव्यक्ति की ऐसी क्षमताएँ आ जाती हैं जो उनकी प्रकृति के लिए बिलकुल अजानी थीं।

दो शक्तिशाली उत्तोलक

दो मुख्य चीज़ें हैं। उत्साह के लिए यह क्षमता जो मनुष्य को उसकी कम या अधिक जड़ता में से बाहर निकाल लाती है ताकि वह अपने-आपको अधिक या कम पूर्णता के साथ उस चीज़ में झोंक सके जो उसे जगाती है। उदाहरण के लिए, कलाकार अपनी कला के लिए, वैज्ञानिक अपने विज्ञान के लिए। और सामान्यतः, हर ऐसे व्यक्ति में जो निर्माण करता या सृजन करता है, एक-न-एक उद्घाटन होता है, किसी विशेष क्षमता का, किसी विशेष सम्भावना का उद्घाटन जो उसमें उत्साह पैदा करता है। जब यह सक्रिय हो तो सत्ता के अन्दर कोई चीज़ जाग जाती है, और की जाने वाली चीज़ में लगभग सारी सत्ता का सहयोग मिलता है।

यह बात है। और फिर कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें कृतज्ञता की सहज क्षमता होती है, जिनमें प्रत्युत्तर देने की आतुरता होती है, जो किसी ऐसी चीज़ के प्रति, जिसे वे समस्त जीवन के पीछे, छोटे-से-छोटे तत्त्व के पीछे, जीवन की छोटी-से-छोटी घटना के पीछे छिपी अद्भुत वस्तु के रूप में अनुभव करते हैं और उसे ऊष्मा, निष्ठा और आनन्द के साथ प्रत्युत्तर देते हैं। वे सभी चीज़ों के पीछे परम सौन्दर्य या अनन्त 'कृपा' का अनुभव करते हैं।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्हें, हम कह सकते हैं, किसी चीज़ का कोई ज्ञान न था, जो शायद ही कुछ पढ़े-लिखे थे, जिनके मानस बिलकुल सामान्य प्रकार के थे, और जिनमें कृतज्ञता की, ऊष्मा की यह क्षमता थी जो अपने-आपको दे देती है, समझती है और कृतज्ञ होती है। हाँ तो, उनमें उनकी योग्यता के अनुसार, लगभग निरन्तर चैत्य सम्पर्क होता था —बहुत अधिक नहीं, कुछ-कुछ सचेतन सम्पर्क, यानी, वे अनुभव करते थे कि उन्हें ले जाया जा रहा है, सहायता दी जा रही है, उन्हें उनसे ऊपर उठाया जा रहा है।

ये दो चीज़ें लोगों को सबसे अधिक तैयार करती हैं। वे इन दोनों में से किसी एक या दूसरी को लेकर पैदा होते हैं; और अगर वे ज़रा कष्ट उठायें, तो यह चीज़ धीरे-धीरे विकसित होती है, बढ़ती है।

हम कहते हैं कि उत्साह की क्षमता एक ऐसी चीज़ है जो तुम्हें तुम्हारे दरिद्र, क्षुद्र, नीच अहंकार से ऊपर उठा देती है; और उदारतापूर्ण कृतज्ञता,

कृतज्ञता की उदारता जो अपने-आपको धन्यवाद-ज्ञापन में छोटे-से अहंकार में से बाहर निकाल देती है। अपनी चैत्य सत्ता में भगवान् के साथ सम्पर्क पाने के लिए ये दो सबसे अधिक शक्तिशाली उत्तोलक हैं। यह चैत्य सत्ता के साथ जोड़ने वाली कड़ी का काम देती है—सबसे अधिक निश्चित कड़ी का।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४३४, ४६०-६१

चैत्य सत्ता के विकास के लिए आवश्यक शर्तें

मधुर माँ,

हम अपने चैत्य व्यक्तित्व को कैसे विकसित कर सकते हैं?

जीवन के सभी अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व रूप लेता, बढ़ता, विकसित होता और अन्त में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है।

विकास की यह प्रक्रिया अथक रूप से अनगिनत जन्मों तक चलती रहती है, और अगर तुम उसके बारे में सचेतन नहीं हो तो इसका कारण यह है कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन नहीं हो—क्योंकि वही अनिवार्य आरम्भ-बिन्दु है। अभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा तुम्हें अपनी चैत्य सत्ता के सचेतन सम्पर्क में आना होता है। इस चैत्य सत्ता का बाहरी सत्ता पर हमेशा प्रभाव रहता है, परन्तु यह प्रभाव केवल एकदम से अपवादिक अवसरों को छोड़ कर प्रायः हमेशा गुह्य रहता है, इसे न तो देखा, न समझा और न ही अनुभव किया जा सकता है।

इस सम्पर्क को मज़बूत बनाने के लिए, और यदि सम्भव हो तो सचेतन चैत्य व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने के लिए, एकाग्र होते समय तुम्हें उसकी ओर मुड़ना, उसे जानने और अनुभव करने के लिए अभीप्सा करनी चाहिये, उसके प्रभाव को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको खोलना, और हर बार उससे संकेत मिलने पर बहुत सावधानी और सच्चाई के साथ उसका अनुसरण करना चाहिये। चैत्य सत्ता के विकास की आवश्यक शर्तें हैं—एक महान् अभीप्सा में जीना, अन्दर से शान्त रहने के लिए सावधानी बरतना और जहाँ तक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सच्चाई स्थापित करना।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २५३-५४

अन्तरात्मा तथा अभीप्सा

... मनुष्य की सच्ची अन्तरात्मा वास्तव में ऐसे अदृश्य हृदय में निवास करती है जो प्रकृति की किसी उद्‌भासित गुफा में छिपा रहता है : वहाँ छने हुए भागवत 'प्रकाश' के नीचे होती है हमारी अन्तरात्मा, एक नीरव अन्तरतम सत्ता जिसके बारे में कुछ ही लोग अभिज्ञ होते हैं; यद्यपि सबके अन्दर अन्तरात्मा है, लेकिन कुछ एक व्यक्ति ही अपनी सच्ची अन्तरात्मा के प्रति सचेतन होते हैं या उसकी सीधी प्रेरणा का अनुभव करते हैं। वहाँ बसती है प्रभु की वह नन्हीं-सी चिनगारी जो हमारे स्वभाव की अँधेरी राशि को सहारा देती है और उसी चिनगारी के चारों ओर चैत्य सत्ता का गठन होता है, वही है गठित अन्तरात्मा या हमारे अन्दर का सच्चा 'मानव'। जैसे-जैसे यह चैत्य सत्ता मनुष्य के अन्दर विकसित होती रहती है और उसका हृदय उसकी दिव्यता तथा उसकी प्रेरणाओं को प्रकट करता रहता है, वैसे-वैसे मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के प्रति अधिकाधिक सचेतन बनता जाता है, फिर वह उच्चतर पशु नहीं बना रहता, और अपने अन्दर के देवत्व की झलकों के प्रति उद्‌घाटित होकर वह गभीरतर जीवन तथा चेतना की घनिष्ठता में बढ़ता जाता है, और तब उसके अन्दर सामान्य जीवन से हट कर, भागवत जीवन के प्रति अभीप्सा जाग उठती है।

CWSA खण्ड २३, पृ. १५०

"सतत और निष्कपट अभीप्सा, तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने के एकमात्र उत्तम तरीक़े हैं।"

एक ऐसा समय निश्चित कर लो जब तुम रोज़ ख़ाली और शान्त रह सको; आराम से बैठ जाओ और इस अभीप्सा के साथ अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सोचो कि तुम्हारा उसके साथ सम्पर्क स्थापित हो जाये। अगर तुम तुरन्त सफल न हो सको तो निराश मत होना; एक दिन तुम अवश्य सफल होओगी। मैं बस तुमसे यही माँग करती हूँ कि तुमने जो समय चुना हो उसकी मुझे सूचना दे देना ताकि मैं अधिक सचेतन रूप से तुम्हारी सहायता कर सकूँ।

अपने समस्त प्रेम और आशीर्वाद सहित।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ४७४

वह पूर्णयोग का एक निर्णायक क्षण होता है जब यह चैत्य पुरुष मुक्त होकर, परदे के पीछे से सामने की ओर आकर, अपनी भविष्य-सूचनाओं, दृष्टियों और प्रेरणाओं की परिपूर्ण बाढ़ से मनुष्य के तन-मन-प्राण को आप्लावित करने और पार्थिव प्रकृति में देवत्व के निर्माण का आरम्भ करने में समर्थ होता है।

'योग-समन्वय', पृ. १५३ —श्रीअरविन्द

चैत्य उद्‌घाटन

सच्चा आत्मोत्सर्ग

चैत्य सत्ता केवल तभी पूरी तरह से खुल सकती है जब साधक अपनी साधना से प्राणिक उद्देश्यों के घालमेल से पिण्ड छुड़ाने में सफल हो जाये और श्रीमाँ के प्रति सरल और सच्चा आत्मोत्सर्ग करने में सक्षम हो। अगर उसके अन्दर किसी भी तरह का स्वार्थी घुमाव हो या उसके उद्देश्य में सच्चाई न हो, अगर योग प्राणिक माँगों के दबाव-तले या आंशिक अथवा पूरी तरह से किसी आध्यात्मिक या किसी दूसरी महत्त्वाकांक्षा, दर्प, अहंकार, शक्ति या पद पाने या दूसरों के ऊपर प्रभाव डालने या योग की शक्ति द्वारा किसी भी तरह की प्राणिक कामना को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाये तो चैत्य का उद्‌घाटन नहीं हो सकता, या होता भी है तो आंशिक या कभी-कदास और वह रह-रह कर बन्द हो जाता है, क्योंकि वह प्राणिक क्रिया-कलापों से ढँका रहता है; चैत्य अग्नि दमघोंटू प्राणिक धुएँ को हटाने में असमर्थ हो जाती है। और साथ ही, योग में अगर मन प्रमुख भूमिका ले ले और आन्तरिक अन्तरात्मा को पृष्ठभूमि में कर दे, या, अगर भक्ति अथवा साधना की दूसरी क्रियाएँ चैत्य-रूप लेने की बजाय अधिक प्राणिक रूप ले लें तो वही समान असमर्थता उठ खड़ी होती है। चैत्य सत्ता के पूरी तरह खुलने के लिए शर्तें हैं—पवित्रता, सरल सच्चाई और बिना किसी दिखावे या माँग के अनहंकारी, अमिश्रित, आत्म-दान की क्षमता का होना।

चैत्य सत्ता को सम्मुख लाने का कोई अनुमोदित तरीक़ा नहीं है। यह पूरी तरह से निर्भर करता है साधक की अभीप्सा पर, श्रद्धा तथा भक्ति के विकास पर, मानसिक तथा प्राणिक अहंकार तथा उनकी क्रियाओं की पकड़ की शिथिलता पर—तब इस विकास में अमुक क्षण ऐसा आता है जब चैत्य तथा साधक की प्रकृति के बीच का परदा झीना होते-होते चिरने लगता है, पीछे से चैत्य अधिकाधिक दिखायी देने लगता है, अधिकाधिक सक्रिय हो जाता है और अन्त में सत्ता का भार पूरी तरह से अपने ऊपर ले लेता है। CWSA खण्ड ३०, पृ. ३४९, ३६०

निष्काम, निस्स्वार्थ क्रिया

निष्काम, निःस्वार्थ क्रिया संसार में चैत्य चेतना के सबसे सुन्दर रूपों में से एक है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलाप की सीढ़ी पर जितना ही उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है। क्योंकि बुद्धि के साथ ही आते हैं कौशल और चालाकियाँ, भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरण के लिए, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूप में खिलता है, केवल सुन्दर होने के आनन्द के लिए, सुगन्ध देने, जीवन के आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए खिलता है। और वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता : वह ऐसा इतने सहज भाव से करता है, होने के, जीने के आनन्द में करता है। मनुष्य को लो, कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़ कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है, वह अपनी सुन्दरता और चालाकी से लाभ उठाना चाहता है; वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगों की प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज़ पाना चाहता है। फलतः, चैत्य-दृष्टि से गुलाब मनुष्य से ज़्यादा अच्छा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६६

चैत्य अवस्था

भगवान् जब धरती पर कार्य करने के लिए प्रकट होते हैं तो ऐसा लगता है कि वे पूरी तरह मानव रीति से काम कर रहे हैं, लेकिन सचमुच ऐसा नहीं होता। प्रत्यक्ष तथा प्रतीत होने वाले मानकों से उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। परन्तु मनुष्य अपनी हीनता पर पूरी तरह से मुग्ध होते हैं और किसी उच्चतर सत्य के आगे झुकने या उसे स्वीकार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं होते। अपने अन्दर से जिसे कोई चीज़ उच्चतर सत्य मानती है उसमें दोष ढूँढने की यह इच्छा, उसकी आलोचना करने और उस पर सन्देह करने का दुर्भावनापूर्ण आवेग मानवता की मुहर है—यह क्षुद्र मानव का चिह्न है। जब कि दूसरी ओर, जहाँ भी सत्य, सुन्दर, उदात्त के लिए सहज प्रशंसा निकलती है तो यह एक तरह की भागवत अभिव्यक्ति है। तुम निश्चित रूप से जान लो कि जब तुम किसी चीज़ को दिव्य स्रोत से आया हुआ अनुभव करते हो और तुम्हारा हृदय उसकी प्रशंसा और आराधना करने के लिए उछल पड़ता है तो तुम्हारी भौतिक

चेतना चैत्य पुरुष के, तुम्हारी अन्तरात्मा के सम्पर्क में आयी है।

जिस क्षण तुम इस प्रकार की चीज़ के सामने आओ उसी क्षण तुम्हारी आँखों में आनन्द के आँसू छलक आने चाहियें। वह बहुत तुच्छ व्यक्ति है जो ऐसे समय रुक कर यह सोचता है, "हाँ, यह बड़ी चीज़ है लेकिन इसकी सराहना तभी की जा सकती है जब यह मेरे हिस्से में आ जाये। काश! मैं इस गुण का भाग्यवान् स्वामी होता, इस उच्चतर अभिव्यक्ति का यन्त्र होता।" तुम अपने अहं की चिन्ता किसलिए करो जब कि मुख्य बात तो यह है कि भगवान् अपने-आपको जहाँ और जैसे चाहें अभिव्यक्त करें? जब वे इस तरह अभिव्यक्त हों तो तुम्हें परितोष का अनुभव होना चाहिये। तुम्हें अपने दयनीय व्यक्तित्व के सीमित बन्धनों को तोड़ कर निस्स्वार्थ आनन्द में ऊँची उड़ान भरनी चाहिये। यह आनन्द इस बात का सच्चा चिह्न है कि तुम्हारी अन्तरात्मा जाग गयी है और उसने सत्य का बोध पा लिया है। और तभी तुम ऊपर से उतरते हुए सत्य के प्रभाव के प्रति खुल सकते हो और उसके द्वारा गढ़े जा सकते हो। मुझे ऐसे अवसर याद हैं जब मैं छोटे बच्चों को, यहाँ तक कि शिशुओं को भी कोई ऐसी चीज़ करते देखती जो दिव्य रूप से अत्यन्त सुन्दर और सरल हो तो मेरी आँखों में आँसू छलक आते थे। उस आनन्द का अनुभव करो और तुम अपने बीच भगवान् की उपस्थिति का लाभ उठा सकोगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १७०-७१

दुःख से ऊपर उठो

मानव-चेतना की एक ऐसी स्थिति है जिसमें ये दोनों चीज़ें एक साथ रह सकती हैं (यह चेतना वास्तव में मानवीय ही है, अभी अतिमानवीय नहीं बनी है)। व्यक्ति पर कष्ट आ सकते हैं और यह हो सकता है कि वह उन्हें अनुभव न करे, वह इस प्रकार रहे मानों उनका कोई अस्तित्व ही न हो। तात्पर्य यह कि कोई दुर्भाग्य, कोई "कष्ट" केवल बाह्य चेतना को, शारीरिक, प्राणिक और मानसिक चेतना को ही स्पर्श करता है, किन्तु चैत्य सत्ता—वास्तव में चैत्य सत्ता सभी कष्टों से परे रहती है। एक बहुत साधारण उदाहरण लें: किसी बीमारी का। शरीर में गड़बड़ होने से तुम्हें कष्ट होता है, कभी-कभी बहुत अधिक कष्ट होता है, किन्तु ऐसे लोग होते

हैं जो चेतना की ऐसी स्थिति में रहते हैं कि उनके लिए शारीरिक कष्टों का अस्तित्व ही नहीं होता, वे उनके लिए वास्तविक नहीं होते। यही बात बिछोह की है। यदि तुम किसी से प्रेम करते हो और उससे तुम्हारा बिछोह हो जाता है तो तुम्हें कष्ट होता है—यह एक सर्वसामान्य कष्ट है, इससे व्यक्तियों का प्रेम-बन्धन टूट जाता है—किन्तु चेतना की एक विशेष स्थिति होती है जहाँ दो प्राणियों के बीच का सच्चा बन्धन नहीं टूट सकता, क्योंकि वह उस स्तर की वस्तु नहीं होता जहाँ चीज़ें टूटा करती हैं। इसलिए, जो कुछ भी घटित हो, मनुष्य उससे ऊपर रहता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ५५

चैत्य पथ-प्रदर्शन करे

इसे कोई कैसे जान सकता है कि आन्तरात्मिक सत्ता सम्मुख है या नहीं?

कौन? व्यक्ति स्वयं?... उसका अनुभव नहीं होता क्या? तुम्हें अनुभव नहीं होता? मैं छोटे बच्चे की बात नहीं कह रही हूँ, क्योंकि उसमें न नियन्त्रण की शक्ति होती है और न निरीक्षण की, उसमें अपने-आपको देखने की योग्यता भी नहीं होती। किन्तु, जब व्यक्ति बिलकुल छोटा बच्चा नहीं रहता, क्या तब भी वह अनुभव नहीं करता? क्या उसे कोई अन्तर नहीं अनुभव होता?... *(बच्चा "हाँ" में सिर हिलाता है।)* ओह!... तुममें से ऐसा एक भी नहीं होगा जो मुझसे यह कहने का साहस कर सके कि जब उसमें अन्तरात्मा सम्मुख होती है, जब वह अपने अन्दर अच्छा महसूस करता है, अपने में प्रकाश, आशा, सद्भावना, उदारता, संसार के लिए करुणा इत्यादि अनुभव करता है, और जीवन को कर्म, विकास और चरितार्थता के क्षेत्र के रूप में लेता है तो उसे कुछ अन्तर नहीं प्रतीत होता। क्या इस अवस्था में और उसमें फ़र्क नहीं लगता जब वह ऊबा हुआ होता है, शिकायत करता है, जब उसे सब कुछ कुरूप, असुखकर और दुष्टतापूर्ण दिखायी देता है, जब वह किसी से प्यार नहीं करता, सब कुछ तोड़-फोड़ देना चाहता है, क्रुद्ध हो उठता है, क्षुब्ध, निःशक्त, निरुत्साहित और निरानन्द हो उठता है? इससे अन्तर पड़ता है, पड़ता है न?

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ७

अचूक पथ-प्रदर्शक

एक बार आन्तरात्मिक सत्ता सामने आ जाये, तो क्या वह फिर पीछे भी हट सकती है?

हाँ। सामान्यतया व्यक्ति को इस तादात्म्य की एक के बाद एक बहुत-सी अनुभूतियाँ होती हैं जो शुरू में बहुत तीव्र होती हैं, पर बाद में धीरे-धीरे कम होते-होते एक दिन ग़ायब भी हो जाती हैं। लेकिन तुम्हें इससे चिन्तित नहीं होना चाहिये, क्योंकि ऐसा प्रायः ही होता है। किन्तु अगली बार—दूसरी बार—सम्पर्क अधिक आसानी से स्थापित किया जा सकता है। और तब एक ऐसा क्षण भी आता है, जो बहुत दूर नहीं है, जब एकाग्र भाव से अभीप्सा करते ही अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाता है। व्यक्ति में इस सम्बन्ध को सारे समय बनाये रखने की शक्ति चाहे न भी हो, किन्तु चाहने पर वह यह सम्पर्क प्राप्त कर लेता है। तब, उस क्षण से स्थिति बहुत सरल हो जाती है। जब व्यक्ति कोई कठिनाई अनुभव करे या उसे कोई समस्या हल करनी हो, जब वह प्रगति करना चाहे या अवसाद को जीतना हो या किसी बाधा को पार करना हो या सिर्फ तादात्म्य के आनन्द के लिए ही (क्योंकि यह एक ऐसी अनुभूति है जो ठोस आनन्द प्रदान करती है; इस तादात्म्य के क्षण में सचमुच व्यक्ति को एक बहुत, बहुत बड़े आनन्द की अनुभूति होती है), तब, किसी भी समय, व्यक्ति ज़रा रुक कर, एकाग्र भाव से अभीप्सा करे, और बड़े स्वाभाविक रूप में सम्पर्क स्थापित हो जाता है और सुलझाने-योग्य सभी समस्याएँ भी सुलझ जाती हैं। उस समय बस, एकाग्र होने की आवश्यकता होती है—शान्तिपूर्वक बैठ कर व्यक्ति एकाग्र हो—इस तरह अभीप्सा करने से, कह सकते हैं, तुरन्त सम्पर्क स्थापित हो जाता है।

जैसा कि मैं कह चुकी हूँ, एक ऐसा समय आता है जब यह सम्पर्क तुम्हें नहीं छोड़ता, अर्थात्, यह तुम्हारी चेतना की गहराई में स्थापित हो जाता है और तुम जो भी करो उस सबमें तुम्हारी सहायता करता है, और तुम इस सम्पर्क से कभी नहीं अलग होते। तब कई चीज़ें दूर हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, अवसाद भी इनमें से एक है, असन्तोष, विद्रोह, थकावट, अवसाद, ये सभी कठिनाइयाँ। और, जैसा कि हम कहते हैं, यदि व्यक्ति

अपनी चेतना में एक पग पीछे हट कर, अपनी आन्तरात्मिक चेतना के परदे पर वस्तुओं को देखने का अभ्यास डाल ले—सभी परिस्थितियों को, सभी घटनाओं को, सभी विचारों को, समस्त ज्ञान को, सब कुछ को देखने का—तो उस समय वह उसे देख लेता है और तब **उसे** उन सब वस्तुओं के लिए, जो वह करता है, एक बिलकुल अचूक पथ-प्रदर्शन प्राप्त हो जाता है। किन्तु इसे साधित होने में निश्चित रूप से बहुत अधिक समय लगेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३८-३९

... जैसे ही तुम शारीरिक असन्तुलन की लहर का, अस्वस्थता के आने का अनुभव करो, तो उस समय उचित भाव में एकाग्र होने का मतलब होगा आन्तरिक शान्ति में एकाग्रता, भागवत 'कृपा' पर श्रद्धा और भौतिक सन्तुलन एवं अच्छे स्वास्थ्य के लिए संकल्प। एक और मामले में व्यक्ति को यह लग सकता है कि ग़ुस्से की लहर या ताव बाहर से आ रहा है; तब उसे अपने-आपको आन्तरिक शान्ति में खींच लेना और सतही चीज़ों से अपने-आपको काट लेना चाहिये। संकल्प यह होना चाहिये कि हम केवल उसी चीज़ को व्यक्त करें जो ऊपर से आती है, और हमेशा भगवान् की 'इच्छा' के प्रति समर्पित रहें। यही उचित भाव है। स्वाभाविक रूप से बात हमेशा वहीं पर आ जाती है कि हमें भगवान् को याद रखना, अपने-आपको 'उनकी' सेवा में लगाना और वही चाहना चाहिये जो 'वे' चाहें।

... जब तुम उलझन में होते हो, जब तुम्हें चुनाव करना होता है, जब तुम्हें पता नहीं होता कि करने-लायक ठीक चीज़ कौन-सी है—तुम्हें दो, तीन, चार सम्भव निर्णयों में से किसी एक को चुनना हो और यह समझ में न आ रहा हो कि कौन-सा ठीक निर्णय है, तब जहाँ तक हो सके, तुम्हें अपने-आपको चैत्य पुरुष के, अपने अन्दर दिव्य 'उपस्थिति' के सम्पर्क में लाना चाहिये और अपनी समस्या चैत्य चेतना के आगे रख कर सच्चे प्रकाश के लिए, सच्चे निर्णय के लिए, एक ऐसे निर्णय के लिए जो भागवत 'इच्छा' के सबसे अधिक अनुकूल हो, माँग करनी चाहिये, और प्रेरणा को सुनने और ग्रहण करने के लिए कोशिश करनी चाहिये।

तुम देखोगे कि हर एक अवस्था में, यही उचित वृत्ति है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३८४-८५

चैत्य आनन्द

सुख अपने-आपमें बहुत अस्थायी होता है। परन्तु यदि तुम आनन्द की बात कर रहे हो तो वह एकदम से भिन्न वस्तु है, वह हृदय में प्राप्त होने वाली एक प्रकार की उष्णता और ज्योति है, है न?—हम अपने मन में भी आनन्द अनुभव कर सकते हैं, पर वह कहीं अन्यत्र प्राप्त होने वाली एक प्रकार की उष्णता और सुखकर ज्योति होता है। वह एक ऐसा गुण है जो अभी तक पूर्णतया विकसित नहीं हुआ है और मनुष्य कभी-कदास ही उसे प्राप्त करने-योग्य आवश्यक मनोवैज्ञानिक स्थिति में होता है। और यही कारण है कि वह क्षणस्थायी होता है। अन्यथा, सत्ता के सत्य के अन्दर, सत्ता के सत्य-स्वरूप के अन्दर, तुम्हारी सच्ची आत्मा के, तुम्हारी अन्तरात्मा के, तुम्हारे चैत्य पुरुष के अन्दर आनन्द निरन्तर बना रहता है, निरन्तर।

इसका सुख के साथ कोई सरोकार नहीं, यह एक प्रकार का आन्तरिक आह्लाद है।

परन्तु मनुष्य बहुत कम ही इसे अनुभव करने की स्थिति में होता है, जब तक कि कोई अपने चैत्य पुरुष के विषय में पूरी तरह सचेतन नहीं हो जाता।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २३०-३१

चैत्य अभीप्सा

जैसे ही चैत्य चेतना की उपस्थिति अभीप्सा के साथ संयुक्त हो जाती है, उसकी तीव्रता बिलकुल ही भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेती है मानों वह किसी अवर्णनीय हर्ष के एकदम सारतत्त्व से भर गयी हो। यह हर्ष एक ऐसी वस्तु है जो बाक़ी सभी चीज़ों में विद्यमान प्रतीत होती है। अभीप्सा का बाहरी आकार चाहे जो कुछ भी हो, उसके सामने चाहे जो भी कठिनाइयाँ और बाधाएँ हों, यह आनन्द वहाँ विद्यमान होता है मानों वह प्रत्येक वस्तु में भरा हुआ हो, और वह आनन्द हर चीज़ के बावजूद, तुम्हें आगे बढ़ा ले जाता है।

यह चैत्य उपस्थिति का सुनिश्चित चिह्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुमने अपनी चैत्य चेतना के साथ एक प्रकार का कम या अधिक पूर्ण, कम या अधिक अविच्छिन्न सम्पर्क स्थापित कर लिया है, परन्तु उस मुहूर्त

में, चैत्य पुरुष, चैत्य चेतना ही वह वस्तु होती है जो तुम्हारी अभीप्सा में भर जाती है, उसे उसका सच्चा मूल-तत्त्व प्रदान करती है और यही चीज़ है जो आनन्द में रूपान्तरित हो जाती है।

जब यह चीज़ वहाँ नहीं होती, तब अभीप्सा सत्ता के विभिन्न भागों से आ सकती है; वह मुख्यतः मन से अथवा मुख्यतः प्राण से या यहाँ तक कि शरीर से भी आ सकती है, अथवा वह इन तीनों से एक साथ आ सकती है—वह सभी प्रकार के संयोगों से आ सकती है। पर सामान्यतया, वहाँ तीव्रता के होने के लिए, प्राण का विद्यमान होना ज़रूरी है। प्राण ही तीव्रता प्रदान करता है; और चूँकि यह प्राण साथ-साथ अधिकतर कठिनाइयों, बाधाओं, विपरीतताओं का भी स्थान है, इसलिए अभीप्सा की तीव्रता और कठिनाई की तीव्रता के बीच का संघर्ष इस वेदना को उत्पन्न करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३०१-०२

शिशु-सा विश्वास रखो

तुम्हें एक बात याद रखनी चाहिये : अँधेरे काल अनिवार्य होते हैं। जब तुम्हारा चैत्य सक्रिय होता है तो तुम बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के एक आह्लाद का अनुभव करते हो। ऐसा कुछ समय चलता है और फिर से वही मानसिक और प्राणिक प्रतिक्रियाएँ तुम्हारे अन्दर आ जाती हैं और तुम फिर अन्धकार में लौट जाते हो। ऐसा होता रहेगा। उजाले दिन अधिक बड़े होते जायेंगे और अँधेरे काल लम्बे अन्तराल के बाद और कम समय के लिए आयेंगे जब तक कि वे पूरी तरह से विलीन न हो जायें। तब तक तुम्हें यह जानना चाहिये कि बादलों के पीछे सूरज है और तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे अन्दर शिशु-सा विश्वास होना चाहिये—यह विश्वास कि कोई है जो तुम्हारी देखभाल करता है और तुम पूरी तरह से उस पर निर्भर रह सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २७३

जहाँ तक हृदय की बात है, इस योग में भगवान् के लिए ललकना, रोना-धोना, दुःखी होना या तरसना इत्यादि चीज़ें आवश्यक नहीं हैं। आवश्यक रूप से होनी चाहिये एक प्रबल अभीप्सा, हाँ, एक तीव्र ललक ज़रूर हो

सकती है, तीव्र प्रेम तथा ऐक्य पाने के लिए संकल्प हो सकता है; लेकिन इसमें दुःख-शोक या बेचैनी और विक्षुब्धता की कोई ज़रूरत नहीं है। जितना अधिक तुम अपने हृदय में अचञ्चलता और शान्ति का अनुभव करोगे, परिणाम-स्वरूप, उतना ही अधिक तुम उच्चतर चेतना के नीचे उतरने के दबाव को महसूस करोगे। यह चीज़ हमेशा मन तथा हृदय में अचञ्चलता ले आती है और जैसे-जैसे यह नीचे उतरती है वैसे-वैसे एक महान् शान्ति और निश्चल-नीरवता तुम्हारे अन्दर बसने लगती हैं। शान्त हृदय के साथ मन में सच्चा मनोभाव होना चाहिये और इस तरह तुम यह अनुभव करोगे कि तुम श्रीमाँ के बच्चे हो, तुम्हारे अन्दर उनके साथ एक होने की श्रद्धा और संकल्प उत्पन्न होंगे। इसके साथ-साथ, जो चीज़ आने वाली है उसके लिए तुम्हारे अन्दर एक अभीप्सा या नीरव प्रत्याशा भी हो सकती हैं। ऐसा लगता है कि वह भी तुम्हारे अन्दर है। इसलिए, सब कुछ ठीक है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३७७

श्रीमाँ की उपस्थिति का हमेशा अनुभव करना

तुम अपने अन्दर अधिकाधिक गभीर रूप से चैत्य चेतना में उतरते जा रहे हो। जब व्यक्ति चैत्य चेतना में होता है तो वह अपने अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति का अनुभव करने लगता है और कुछ समय बाद, जैसे-जैसे चैत्य अपनी शक्ति में विकसित होता जाता है, यह चीज़ अधिकाधिक अनुभव की जा सकती है, यह ओजस्वी और सत्य बन जाती है। अलग-अलग साधकों के अन्दर यह अलग-अलग तरीक़ों से अनुभव की जा सकती है, लेकिन यही होती है साधना की सच्ची अनुभूति।

जब हम कहते हैं कि साधक को हमेशा अपने हृदय में या अपने अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति को अनुभव करना चाहिये तो उससे हमारा यही मतलब होता है। क्योंकि, वास्तव में वे हमेशा वहीं उपस्थित रहती हैं, केवल उनकी उपस्थिति मन, प्राण तथा भौतिक के सामान्य क्रिया-कलापों के परदे के पीछे छिपी रहती है, लेकिन जब ये शान्त हो जाते हैं और चैत्य परदे से बाहर निकल आता है तब व्यक्ति अपने अन्दर 'भगवान्' की उपस्थिति का अनुभव करने लगता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८७

चैत्य भक्ति

श्रीमाँ के प्रति इतने प्रबल रूप से जिस प्रेम का तुम अनुभव कर रहे हो और साथ ही जिनके साथ तुम रहते हो या कार्य करते हो उनके साथ सामञ्जस्य तथा स्नेह की जिस प्रवृत्ति के बारे में तुम कह रहे हो ये दोनों ही चैत्य सत्ता से आते हैं। जब चैत्य अपने प्रभाव को तीव्र बना देता है तब श्रीमाँ के प्रति यह प्रेम मज़बूत बन जाता है और वही व्यक्ति के स्वभाव को गढ़ने में प्रमुख सहायक बन जाता है। और साथ ही दूसरों के लिए तुम्हारे अन्दर सद्भावना, करुणा तथा स्नेह का जो भाव जाग रहा है वह इतना वैयक्तिक नहीं है बल्कि वह तो श्रीमाँ के सभी बच्चों की अन्तरात्माओं के साथ तुम्हारी अन्तरात्मा के घनिष्ठतम सम्बन्ध का परिणाम है। इस चैत्य भावना के होने में कोई हानि नहीं है; इसके विपरीत, यह तो प्रसन्नता और सामञ्जस्य फैलाती है—वह तो दो व्यक्तियों के बीच का प्राणिक प्रेम है जिसका त्याग करना चाहिये, क्योंकि वह तुम्हें 'भगवान्' के प्रति पूर्ण उत्सर्ग से पीछे खींच लेता है। हाँ, पहले प्रकार का प्रेम श्रीमाँ की चेतना में विकसित होने में तुम्हारी मदद करता है और साथ ही तुम्हारे आन्तरिक जीवन की प्रगति में भी तुम्हारा सहायक होता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६३

चैत्य क्षण

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ को देखने-भर से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

यह चैत्य भावना है।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के स्मरण मात्र से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के विरोध में कुछ सुनने से हृदय में घाव पैदा करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के भौतिक रूप से निकट न होने पर भी हमारे हृदय में श्रीमाँ की उपस्थिति का अनुभव कराती है?

चैत्य।

मैं यह कैसे समझ सकूँगा कि मैं चैत्य प्रेम से भरपूर हूँ?

अहंकार के लोप द्वारा, भक्ति द्वारा, भगवान् के प्रति आज्ञाकारिता और समर्पण द्वारा।

दो दिनों तक श्रीमाँ तथा आपके लिए मेरे अन्दर तीव्र प्रेम था; मेरी सारी सत्ता इससे अभिभूत थी। फिर उसका आंशिक प्रभाव ही रहा —श्रीअरविन्द तथा आपके प्रति एक उच्च तथा गभीर आदर-भाव उदित हुआ और मैंने ऐसी प्रसन्नता का अनुभव किया जिसे कोई भी भौतिक सुख प्रदान नहीं कर सकता।

यह निस्सन्देह चैत्य भाव था।

मैंने बहुधा देखा है कि जब भगवान् के लिए एक आन्तरिक प्रेम उमड़ता है तो आँसुओं की धारा बह निकलती है।

ये भक्ति तथा इसी तरह के अन्य भावों के चैत्य आँसू होते हैं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६७-६८

चैत्य भक्ति

अपने अन्दर श्रीमाँ के लिए शुद्ध भक्ति मैं कैसे पा सकता हूँ?

पवित्र पूजा, आराधना, बिना किसी दावे या माँग के भगवान् के प्रति प्रेम —इसे ही कहते हैं, शुद्ध भक्ति।

यह किस भाग से अभिव्यक्त होती है?

चैत्य से।

क्या चैत्य भक्ति पूर्ण भक्ति है?

यह पूर्ण भक्ति का आधार है।

मैं चैत्य भक्ति को कैसे विकसित कर सकता हूँ?

निष्कपट अभीप्सा द्वारा।

श्रीमाँ के लिए चैत्य भक्ति, मानसिक भक्ति तथा प्राणिक भक्ति के चिह्न क्या हैं? उन्हें कैसे पहचाना जाये?

चैत्य भक्ति में होता है प्रेम तथा आत्म-दान, उसमें कोई माँग नहीं होती, प्राण में होती है यह इच्छा कि श्रीमाँ उसे अपने अधिकार में ले लें और वह उन्हीं की सेवा करे, मानसिक भक्ति में होती है श्रद्धा और श्रीमाँ जो कहें या जो करें उसके लिए ऐसी स्वीकृति जो कभी प्रश्न नहीं करती। बहरहाल, ये सभी बाहरी चिह्न हैं—जो आन्तरिक चिह्न होता है उसे आसानी से पहचाना जा सकता है, लेकिन उसे शब्दों में रखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अन्त में भक्ति एक और समान ही है।

क्या इस योग में मानसिक तथा प्राणिक भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है?

किसने कहा नहीं है? जब तक वह सच्ची हो तब तक प्रत्येक भक्ति का अपना स्थान है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४७६-७७

प्रत्यक्ष रूप से चैत्य केन्द्र का खुलना तभी आसान होता है जब अहंकारी प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होने लगे और साथ ही श्रीमाँ के प्रति प्रबल भक्ति का उफान हो। इसके लिए आध्यात्मिक विनम्रता, समर्पण तथा निर्भरता अनिवार्य हैं।

— श्रीअरविन्द

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

दिसम्बर

१. एकमात्र चीज़ जो तुम्हें करनी चाहिये वह है, स्थिर रहना, अक्षुब्ध रहना और भगवान् की ओर मुड़े रहना। बाक़ी सब उनके हाथ में है। यदि किसी दिव्य चीज़ को धरती पर प्रतिष्ठित करना है तो सभी निम्नतर गतिविधियों को जीतना होगा।

२. अपने-आप शान्त और एकाग्र रह कर ऊपर से आने वाली शक्ति को अपना काम करने देना, यही हर चीज़ और सभी चीज़ों का सबसे निश्चित उपचार है।

अगर यह ठीक तरह से किया जाये तो ऐसा कोई रोग नहीं है जो इसके विरुद्ध खड़ा रह सके। हाँ, यह समय पर और काफ़ी लम्बे समय तक स्थिर श्रद्धा और अचञ्चल इच्छा के साथ करना होगा।

३. डरो मत, अपनी आस्था बनाये रखो। ये सारी तकलीफ़ें तुम्हें छोड़ जायेंगी।

४. दुःख को दुलारो मत, और दुःख तुम्हें पूरी तरह छोड़ देगा।

५. निराशा विकास के लिए कभी आवश्यक नहीं होती, यह सदा दुर्बलता और तमस् का चिह्न होती है।

निराशा प्रायः विरोधी शक्ति की उपस्थिति की द्योतक होती है।

६. तुम्हें सभी परिस्थितियों में, चाहे वे कितनी भी भयंकर क्यों न प्रतीत होती हों, भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण के आनन्द में निवास करना चाहिये और प्रभु से सच्चे हृदय से यह कहना चाहिये : "तेरी इच्छा पूर्ण हो। तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

७. प्रत्येक वस्तु भागवत कृपा पर निर्भर है, इसलिए हमें भविष्य की ओर विश्वास और शान्ति के साथ देखना चाहिये, साथ ही जितनी तेज़ी से हो सके, प्रगति करते चलना चाहिये।

८. जीवन की परिस्थितियाँ चाहे जैसी हों, तुम्हें सदैव निराशा से दूर रहना चाहिये और फिर मलिन, उदास और हताश रहने की यह आदत वस्तुतः परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होती, बल्कि यह प्रकृति

में विश्वास न होने से उत्पन्न होती है।

९. स्वयं पर नियन्त्रण करने से बढ़ कर कोई और विजय नहीं है।

१०. शान्ति, एक ऐसी शान्ति जो बाहरी परिस्थितियों से बिलकुल स्वतन्त्र हो। तुम भगवान् की ओर अधिक अभिमुख होओ, सच्ची आन्तरिक शान्ति के लिए अभीप्सा करो और तब तुम बिना किसी बाधा के अपने कार्य को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त शान्ति पा लोगे।

११. लोभी न बनो। तुम्हें जो कुछ दिया गया है उससे सन्तुष्ट रहो और जो कुछ दिया गया है उसके लिए कृतज्ञ रहो, और उससे ज़्यादा नहीं दिया गया, इसके लिए कुढ़ो मत।

१२. औरों के दोषों की जगह स्वयं अपने दोषों की परवाह करो।
अगर हर एक गम्भीरता के साथ आत्म-परिपूर्ति के लिए कार्य करे तो सबकी पूर्णता अपने-आप आ जायेगी।

१३. जब तुम्हें लगे कि तुम्हारे काम में कोई चीज़ तुम्हें बाहर से तकलीफ़ दे रही है तब अपने अन्दर देखो, तो तुम उसके अनुरूप कठिनाई अपने अन्दर पाओगे। तुम अपने-आपको बदलो तो परिस्थितियाँ बदल जायेंगी।

१४. तुम्हें अपना काम अपनी अधिक-से-अधिक योग्यता के साथ चुपचाप करते जाना चाहिये। केवल काम के बारे में सोचो, इधर-उधर की राजनीति इत्यादि के बारे में नहीं, जिसका कोई महत्त्व नहीं है।

१५. काम जैसा भी आये, करते चलो, वह तुम्हारी क्षमताओं के अधिकाधिक अनुकूल होता जायेगा।

१६. तुम किसी को कोई अच्छी सलाह तब तक नहीं दे सकते जब तक स्वयं अपने-आपको न दे लो और उसके अनुसार आचरण न करो।

१७. जो घण्टे अच्छे या उपयोगी काम किये बिना बेकार जाते हैं वे ही सबसे ज़्यादा थकाने वाले होते हैं।

१८. भागवत इच्छा के साथ व्यक्ति की एकता के चार चरण—अभीप्सा, समर्पण, ग्रहणशीलता, सहयोग।

१९. हे प्रभो! कल्याण और दया के देव, हम तेरे असीम उपहारों के लिए तुझे धन्यवाद देते हैं।
प्रभो! मुझ पर यह कृपा कर—**मैं तुझे कभी न भूलूँ।**

२०. तुम्हारे संकल्प को कभी डगमगाना नहीं चाहिये, प्रयास निरन्तर बना रहना चाहिये और श्रद्धा अडिग होनी चाहिये।

२१. और लोग क्या करते हैं, इससे अपने-आपको व्यथित न करो। यह बात जितनी बार कही जाये कम है। मूल्यांकन न करो, आलोचना न करो, तुलना न करो—यह तुम्हारा काम नहीं है।
उच्चतम गुणों में से एक है—औरों के मामलों में टाँग न अड़ाना।

२२. सुखी और शान्त होने का सबसे अच्छा उपाय है—भगवान् के प्रति गहराई में, तीव्रता के साथ सतत कृतज्ञता का अनुभव करना।

२३. भूतकाल चाहे जो रहा हो, भगवान् के साथ नाता जोड़ने के लिए समय की नहीं, अभीप्सा की सच्चाई और निष्कपटता की ज़रूरत है।

२४. अक्षमता के बारे में सभी विचार वाहियात होते हैं, ये प्रगति के सत्य के विरोधी होते हैं। अगर अभीप्सा हो तो जो आज नहीं हो सकता वह किसी और दिन होकर रहेगा।

२५. निश्चय ही तुम यह न मानते होगे कि कठिनाइयों का सामना किये बिना ही साधना हो सकती है। चूँकि तुम्हारी अभीप्सा सच्ची थी इसलिए तुम्हारी अवचेतना में जो कुछ भागवत प्राप्ति के विरुद्ध था वह रूपान्तरित होने के लिए ऊपरी सतह पर आ गया है। इसमें दुःखी या उदास होने की कोई बात नहीं है। इसके विपरीत, प्रगति के इन अवसरों पर तुम्हें ख़ुश होना चाहिये। मेरे प्रेम, मेरी शक्ति और मेरे आशीर्वादों की सहायता का सहारा लेना कभी न भूलो।

२६. कठिनाई को नयी प्रगति के अवसर में बदलना अच्छा है।

२७. स्पष्ट कहना और उद्घाटित रहना हमेशा अच्छा होता है। अपनी ग़लतियाँ सुधारने का यह सबसे अच्छा तरीक़ा है।

२८. स्वार्थ तुम्हें ईर्ष्यालु बनाता है और दुर्बलता तुम्हें आलसी बनाती है।

२९. तुम्हें सदैव शुभकामना और प्रेम अपने हृदय में रखना चाहिये और उन्हें सबके ऊपर शान्ति और समानता के साथ उँडेलना चाहिये। हमेशा सबसे अच्छी चीज़ होती है, बहुत शान्त रहना।

३०. तुम जो भी कार्य करो अधिक-से-अधिक पूर्णता के साथ करो। मनुष्य में उपस्थित भगवान् की यही सबसे अच्छी सेवा है।

३१. हर एक अपनी मुसीबतों का सर्जनहार है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

मानवजाति को संकट में से उबारने का उपाय

मानवजाति अपने इतिहास के संकट-काल में से गुज़र रही है। पुराने मूल्य, विचार, दर्शन, सिद्धान्त बदलते समय की माँग पूरी करने में असमर्थ हैं। विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में ऐसे आविष्कार लाकर रख दिये हैं जिनसे सारी मानवजाति का कल्याण और उसकी प्रगति सुरक्षित हो सकती है, और दूसरी ओर अहंकारमय चेतना द्वारा उनके दुरुपयोग से वह सारी दुनिया के लिए प्रलय ला सकता है।

एक छोटा-सा अणु-बम हज़ारों मील के घेरे के मनुष्यों और वस्तुओं को नष्ट कर सकता है और वहाँ से बहती हुई हवा न जाने और कितने हज़ार मीलों में विनाश फैला सकती है। यह तो हुई एक छोटे-से अणु-बम की शक्ति। इससे कहीं अधिक शक्ति वाले हथियार प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों ने इकट्ठे कर रखे हैं।

एक 'सत्ता-संकट' है। कोई किसी की नहीं सुनना चाहता। नेता लोग नहीं जानते कि लोगों को ज़बरदस्ती करके नहीं दबाया जा सकता और लोगों की समझ में नहीं आता कि सत्ता और नियन्त्रण की समस्या को कैसे सुलझाया जाये।

सभी देशों के प्रमुख राजनेता चकराये हुए हैं। समस्याएँ केवल बढ़ी नहीं, सार्वजनिक बन गयी हैं। जनसंख्या की समस्या, बेकारी की समस्या, राजनीतिक समस्या, आर्थिक समस्या—सब की सब सार्वजनिक हो गयी हैं। कई विभिन्न देशों के प्रमुख राजनेता समाधान के लिए भारत की ओर निहार रहे हैं। वे कहते हैं, 'न जाने क्यों, लेकिन हमें लगता है कि समाधान भारत से ही आयेगा।'

भारत के बारे में यह जो अन्तर्भासिक श्रद्धा है उसके पीछे एक सूक्ष्म और गहरा कारण है। प्राचीन भारत केवल सांस्कृतिक ही नहीं बल्कि अनेक क्षेत्रों में नेता था। ऐसा लगता था कि इस महान् राष्ट्र से अनेक सूर्य दमक रहे थे—साहित्य, गणित, ज्योतिष, वनस्पति-शास्त्र और अनेकानेक वस्तुओं के क्षेत्र में। भारत ने ही जगत् को 'शून्य' का विचार दिया। और सबसे बढ़

कर सामुदायिक जीवन का विचार भारत का ही है। हमने राम-राज्य देखा है, हमने ऐसे राजा-महाराजा देखे हैं जो महान् योगी भी थे, जो भगवान् का पथ-प्रदर्शन पाकर शासन करते थे। इन महान् ऋषियों ने भगवान् के नेतृत्व में वेद, उपनिषद् आदि की रचना की। तब लोग ख़ुश थे।

लेकिन फिर ऐसा समय आया जब आध्यात्मिक और भौतिक जीवन का समन्वय डाँवाडोल हो गया। आध्यात्मिक अर्थ भुला दिये गये और लोग बाहरी रूपों से चिपके रह गये। इसी कारण देश का पतन हो गया क्योंकि अधिकतर बाहरी रूप, प्रथाएँ, विधि-विधान, कर्म-काण्ड ग़लत समझे गये या उनका ग़लत अर्थ लगाया गया। हमारी प्राचीन महिमा इस कारण सम्भव हुई कि हमारे पूर्वज जीवन का समग्र रूप देख सकते थे जो भागवत चेतना के साथ एक था। ऋषि राजनीति, विधि-विधान, अर्थशास्त्र, व्यवसाय, पारिवारिक सम्बन्ध, धर्म आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसा समन्वय ले आये थे कि उन्होंने क्रम-विकास के उस मौलिक विधान को नहीं छोड़ा, उस मूलभूत ज्ञान को पकड़े रखा कि भगवान् हर जगह, हर एक में हैं और जीवन का लक्ष्य है, उन्हें व्यक्त करना।

प्राचीन द्रष्टाओं के सभी लेखों के दो पक्ष हैं : एक स्थायी दूसरा सामयिक। जैसा कि मैंने कहा, जिस स्थायी पक्ष को मानवता को बदलना चाहिये था, दुर्भाग्यवश उसकी उपेक्षा कर दी गयी। लोग सामयिक प्रथाओं से चिपके रहे और उनका अन्धा अनुकरण करते गये।

समय आ गया है कि प्राचीन सत्यों को फिर से व्यक्त किया जाये और वह भी इस तरह से कि वे वर्तमान के लिए और भविष्य के लिए उपयुक्त हों। एक विकसनशील जगत् में, जहाँ समाज और मनुष्य दोनों विकसित हो रहे हैं, विचार का भी विकास होना चाहिये। एक नया समन्वय होना चाहिये जो जीवन के परस्पर-विरोधी पक्षों को भी समस्वर बना दे। यह महान् कार्य श्रीअरविन्द ने किया है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों और अपने अन्तर्दर्शनों को अंग्रेज़ी में लिखा है जो ऐसी भाषा है जो संसार के अधिकतर देशों में बोली और समझी जाती है।

जब श्रीअरविन्द भारत की स्वाधीनता के लिए युद्ध कर रहे थे तो उन्होंने मानव क्षमता की सीमा का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि वे अंग्रेज़ों से नहीं लड़ सकते थे क्योंकि न तो भारतीयों के पास उचित साधन थे और

न वे भली-भाँति व्यवस्थित थे।

श्रीअरविन्द ने सोचा कि यदि हमारे पूर्वज अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा इतने सारे परिवर्तन ला सकते थे तो वे भी योग द्वारा ऐसी शक्तियाँ क्यों न विकसित करें जिनसे वे आध्यात्मिक शक्ति द्वारा भारत की स्वाधीनता के लिए युद्ध कर सकें। इसलिए उन्होंने योगाभ्यास शुरू किया और जैसे-जैसे वे उच्चतर चेतना में उठते गये उनका दर्शन सार्वभौम होता गया और वे भारत की स्वाधीनता को पहले से ही निश्चिति के रूप में देख सके। उनके लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि स्वाधीनता पा लेने के बाद भारत क्या करेगा, वह मानवजाति को कौन-सी राह दिखायेगा। वे मानते थे कि भारत को मानवजाति के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

जब श्रीअरविन्द अलीपुर जेल में थे तो स्वामी विवेकानन्द ने उनके सामने प्रकट होकर उन्हें उच्चतर चेतना के अवतरण द्वारा व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता दिखलायी। श्रीअरविन्द ने देखा कि किसी छोटे-मोटे सुधार की नहीं बल्कि अतिक्रमण की आवश्यकता है, मानव से बढ़ कर अतिमानस की ओर तीव्र गति से बढ़ते हुए विकास की ज़रूरत है। ऐसा होने से पार्थिव जीवन सचमुच रूपान्तरित हो जायेगा और मनुष्य में ऐसी क्षमताएँ विकसित हो जायेंगी कि सभी वैज्ञानिक गवेषणा का, जो कुछ भविष्य के गर्भ में है उसका मानव हित के लिए उपयोग हो सकेगा।

जेल से छूट कर और सभी अभियोगों से मुक्त होकर श्रीअरविन्द ने अपना जीवन मनुष्य के अन्दर अतिमानस चेतना के विकास और पृथ्वी पर दिव्य जीवन की स्थापना के लिए अर्पित कर दिया। लोग उनके चारों ओर इकट्ठे होने शुरू हो गये जो जगत् के अलग-अलग हिस्सों से समान दर्शन और समान जीवन के सत्य की खोज में आ रहे थे। उन्होंने इनको मार्ग दिखलाया। उन्होंने लोगों के सामने चौमुखा, आपस में सम्बद्ध, एक दूसरे पर आश्रित, एक बहुत ही महान् भविष्य का दर्शन रखा जिसे अभी तक चरितार्थ नहीं किया जा सका है, यह सिद्ध करने-योग्य एक अनिवार्य भविष्य है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

प्रतीक्षा करने का अर्थ होता है, समय को अपने साथ रखना। —श्रीमाँ

"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र

('मेरी नन्हीं मुस्कान' के नाम, यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। यह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्षों तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रहीं और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयीं। उन्होंने सत्रह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

माँ, एक बार मैंने आपसे कहा था कि अगर कोई आपके लिए सुन्दर चीज़ बनाये तो हम सबको ख़ुश होना चाहिये, फिर वह कोई भी क्यों न हो, मैं होऊँ या कोई और। मेरा मतलब यह है कि किसी की भी बनायी हुई बहुत सुन्दर चीज़ को देख कर हमें बहुत ख़ुश होना चाहिये, और वे सब जो मेरी मधुर माँ से प्रेम करते हैं स्वभावतः ख़ुश होंगे।

क्या आप जानती हैं कि जब मैंने 'क' का बनाया ब्लाउज़ देखा तो मुझे लगा कि किसी और व्यक्ति ने मुझसे ज़्यादा सुन्दर चीज़ बना ली।

माँ, मैं जानती हूँ कि मुझे ऐसा क्यों लगा। अभी तक मेरे अन्दर अपने काम का एक गर्व था: "मैं यहाँ किसी से भी ज़्यादा सुन्दर चीज़ें बनाती हूँ"—कुछ इस तरह का भाव था, इसलिए जब मैंने किसी और की बनायी हुई बहुत सुन्दर चीज़ देखी तो मेरे गर्व को ज़बरदस्त चोट लगी; यह सच नहीं है क्या? (माँ, यहाँ मुझे एक वाक्य याद आता है जो 'क' ने किसी से कहा था, "माँ प्रहार करना जानती हैं।")

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं जान-बूझ कर प्रहार नहीं करती।

माँ, मेरे अन्दर ऐसी बेवकूफ़ी-भरी चीज़ें क्यों हैं? मैं नहीं चाहती उन्हें। वे मेरे अन्दर काफ़ी रह चुकी हैं, अब मुझे नहीं चाहियें। मैं तब तक चैन न पाऊँगी जब तक आप मेरे हृदय में आकर वहाँ

सतत निवास न करें।

मेरी माँ, मेरी अभीप्सा पवित्र और अटूट हो।

हमारे अन्दर की कुछ अवस्थाएँ (और घमण्ड उनमें से एक है) अपने-आप इर्द-गिर्द की परिस्थितियों से प्रहारों को निमन्त्रित करती हैं। और यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इन प्रहारों का उपयोग अधिक प्रगति के लिए करें।

तुम्हारा यह चाहना ठीक है कि यह सारी क्षुद्रता और मूढ़ता ग़ायब हो जाये। इस निश्चय में मैं पूरी तरह तुम्हारे साथ हूँ और मुझे विश्वास है कि तुम्हारी विजय होगी। ३१ जनवरी १९३४

माँ, आज मेरे पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं है। रोज़ की तरह आज भी मैंने दिन भर काम किया।

मैं आशा करती हूँ कि यह नया महीना तुम्हारे लिए वह उपलब्धि लायेगा जिसके लिए तुम कामना करती हो—सुखद स्थिरता, अपरिवर्तनशील शान्ति, प्रकाशमयी नीरवता।

यही मेरी कामना है और यही मेरा आशीर्वाद।

१ फ़रवरी १९३४

माँ, मैं आपको अपने हृदय में पकड़ लूँगी। मुझे शान्ति और सुख के बारे में सोचने की ज़रूरत नहीं। अगर आप हमारे हृदयों में निवास करें तो ये चीज़ें निश्चित रूप से रहेंगी।

मुझे पकड़ने के लिए तुम्हें कहीं दूर न जाना होगा क्योंकि मैं पहले से ही तुम्हारे हृदय में मौजूद हूँ और जैसे ही तुम्हारी आँखें खुलेंगी कि तुम मुझे वहाँ देख पाओगी। अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह अन्दर की ओर मोड़ो, तो तुम मेरी उपस्थिति को उतने ही ठोस रूप में (बल्कि उससे भी बढ़ कर) अनुभव कर सकोगी जैसे तुम सरदी, गरमी को अनुभव करती हो। २ फ़रवरी १९३४

मेरी प्यारी माँ, यह सच है कि आप पहले से ही मेरे हृदय में हो। लेकिन मुझे आँखें खोलना नहीं आता। वे सोते समय को छोड़ कर बाक़ी सारे समय तो खुली ही रहती हैं।

मैं तुम्हारी भौतिक आँखों की नहीं, आन्तरिक आँखों की बात कर रही हूँ।

"अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह अन्दर मोड़ो।" माँ, मैं जब कभी कुछ अनुभव करती हूँ, अपने हृदय में ही अनुभव करती हूँ (मेरा ख़याल है कि हर एक अपने हृदय में ही अनुभव करता है)। मैं बाहर से अनुभव करना नहीं जानती। 'बाहर' से आपका क्या मतलब है?

मेरा मतलब यह है कि अपनी इन्द्रियों के बोध में रहने की जगह, जो ऐकान्तिक रूप से बाहरी चीज़ों में ही लगी रहती हैं, तुम्हें आन्तरिक सत्ता पर एकाग्र होना चाहिये, जिसका जीवन इन्द्रियों से एकदम स्वतन्त्र होता है (देखना, सुनना, सूँघना, चखना और छूना)।

३ फ़रवरी १९३४

माँ, आपने मुझे लिखा हुआ वह पत्र वापस क्यों नहीं लौटाया जो मैंने आज सवेरे आपको अपने पत्र के साथ भेजा था?
माँ, मैं आपकी गोद में लेटना चाहती हूँ।

ओ नन्हीं मुन्नी, मैं ख़ुशी से तुम्हें अपनी गोद में लेती हूँ और इस भारी दुःख को शान्त करने के लिए, जिसका कोई कारण नहीं है, और इस बड़े विद्रोह को शान्त करने के लिए, जिसका कोई कारण नहीं है, तुम्हें अपने हृदय में झुलाती हूँ। आओ, मैं तुम्हें अपनी भुजाओं में ले लूँ, अपने प्रेम से नहला कर, इस दुःखद घटना की स्मृति तक को पोंछ डालूँ। मैंने वह पत्र तुम्हारे पत्र के साथ श्रीअरविन्द को दिखाने के लिए रख लिया था। अब इस कॉपी के साथ लौटा रही हूँ।

२७ फ़रवरी १९३४

नहीं, मेरी प्यारी बच्ची, मुझे विश्वास है कि मैंने तुमसे यह नहीं कहा कि तुम मुझसे कोई चीज़ छिपाना चाहती हो। जब मैं ध्यान के समय तुम्हारे मन और प्राण की बेचैनी को शान्त करने के लिए तुम पर कुछ दबाव डाल रही थी तो तुमने रोना शुरू कर दिया। मैंने सोचा कि अगर तुम मुझे अपने दुःख का कारण बतला दो तो तुम्हें कुछ शान्ति मिल जायेगी और जब तुमने उत्तर न दिया तो मैंने सिर्फ़ इतना पूछा कि क्या तुम बोलना चाहोगी, मैं व्यर्थ में आग्रह करना नहीं चाहती थी। अगर तुमने यह सोच लिया कि मैं नाराज़गी प्रकट कर रही थी तो यह तुम्हारी भूल थी।

ख़ेद की बात है कि कुछ समय से तुम अपने अन्दर बन्द रहती हो और इसलिए मैं तुम्हें जितनी मदद देना चाहती हूँ, नहीं दे पाती।

सस्नेह।

७ जुलाई १९३४

मेरी प्यारी बच्ची, इस अन्तर्दर्शन का अर्थ लगाने का यह एकदम अप्रत्याशित तरीक़ा है। मैंने उसका यह अर्थ हर्गिज़ न किया था। इन अन्तर्दर्शनों में प्रायः प्रतीकात्मक रूपक होते हैं और उन्हें उसी तरह लेना चाहिये।

पहाड़ियाँ जड़-भौतिक प्रकृति का प्रतीक हैं, कठोर और अनमनीय फिर भी अपने अन्दर जीवन-सरिता को छिपाये हुए। जड़ के प्रतिरोध के कारण यह जीवन-सरिता बड़ी मुश्किलों से मुक्त की जा सकती है और कठिनाई से प्रकाश में आ सकती है। लेकिन ज़रा एकाग्रता और आग्रह के साथ जड़ का प्रतिरोध कम पड़ जाता है और जीवन-शक्तियाँ मुक्त हो जाती हैं। यह रूपक लगभग सभी पर लागू हो सकता है, लेकिन इस मामले में इसका सम्बन्ध तुम्हारे साथ था क्योंकि तुम उपस्थित थीं और मैंने उसे इस प्रतिज्ञा के रूप में लिया कि तुम्हारी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी और तुम जल्दी ही प्रकाशमयी, मुक्त और सुखी चेतना में उभर आओगी।

मेरे प्रेम के साथ।

११ जुलाई १९३४

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. १०४-१०९

जब दो व्यक्ति झगड़ते हैं तो भूल दोनों की होती है। —श्रीमाँ

रूपान्तर

रूपान्तर के रास्ते में कौन-सी मुख्य बाधाएँ आ खड़ी होती हैं?

वहाँ सिर्फ़ तीन मौलिक बाधाएँ हैं जो रास्ते में रुकावट डाल सकती हैं :

१. श्रद्धा की अनुपस्थिति या अपर्याप्त श्रद्धा।

२. अहंकार—मन अपने ही विचारों को मज़बूती से पकड़े रखता है, प्राण सच्चे समर्पण की बजाय अपनी ही इच्छाओं को प्राथमिकता देना पसन्द करता है और भौतिक अपनी ही आदतों से चिपका रहता है।

३. चेतना में कुछ तमस् और मूलभूत प्रतिरोध होता है जो बदलना नहीं चाहती क्योंकि उसके लिए काफ़ी प्रयत्न करना पड़ता है या वह अपनी क्षमता या भागवत शक्ति पर विश्वास करना नहीं चाहती या फिर और कोई अधिक अवचेतन कारण हो सकता है। तुम्हें अपने-आप देखना होगा कि उनमें से कौन-सा है?

आपके उपर्युक्त उत्तर में "भौतिक अपनी ही आदतों से चिपका रहता है" का क्या अर्थ है?

उदाहरण के लिए, शरीर भोजन की अपनी पसन्दों से चिपका रहता है, या अपनी ही आदत को प्राथमिकता देता है और काम की अपनी ही सुविधा देखता है—ये भौतिक आदतों के उदाहरण हैं।

"दूसरा अवचेतन कारण" क्या है जिसका उल्लेख आपने रूपान्तर के रास्ते की मुख्य बाधा के रूप में किया था?

यह मैं यहाँ नहीं बता सकता—यह सैकड़ों अलग-अलग रूपों में आता है।

"तमस्" तथा "चेतना में मूलभूत प्रतिरोध", जो रूपान्तर के रास्ते में आते हैं, उन्हें कैसे हटाया जा सकता है?

इन सभी चीज़ों का सिर्फ़ एक ही नियम है—अपने-आपको क़रीब से देखो ताकि जब ये चीज़ें प्रकट हों तब हमेशा इनका पता लग जाये। हमेशा इनका त्याग करो और जब ये लगातार दीखें, हमेशा उनके निष्कासन के लिए अभीप्सा करो। हमेशा श्रीमाँ की शक्ति को उन्हें निकाल बाहर करने के लिए बुलाओ। परन्तु पूरी तरह से सबसे प्रभावी चीज़ तब होती है जब तुम अपने अन्दर श्रीमाँ की शक्ति को कार्य करते हुए अनुभव कर सको तथा हमेशा उनकी क्रिया को समर्थन दे सको।

श्रीमाँ की शक्ति की क्रिया को समर्थन देने का क्या अर्थ है जो आपने कहा कि वह तमस् या चेतना के अन्य प्रतिरोध को दूर करने के लिए सबसे ज़्यादा प्रभावकारी तरीक़ा है?

उनकी क्रिया का समर्थन करने का मतलब है कि जब 'श्रीमाँ की शक्ति' कार्य कर रही हो तब तुम्हें उसे पहचानना चाहिये तथा उसे अन्य अहंकारमयी या अज्ञानी शक्तियों से अलग करके, शक्ति को स्वीकार करना तथा दूसरी चीज़ों को त्याग देना चाहिये। यह एक सामान्य नियम है—इसे हर साधक को अपने-आप करना होगा।

श्रीमाँ की शक्ति को अन्य अहंकारमयी या अज्ञानी शक्तियों से कैसे अलग कर सकते हैं?

तुम्हें केवल पूरी तरह से ईमानदार होना चाहिये, मन के तर्क द्वारा स्वयं अपनी कामनाओं तथा अपने दोषों को उचित मत ठहराओ, अपने-आपको और अपनी गतिविधियों को निष्पक्ष रूप से तथा चुपचाप देखो तथा श्रीमाँ की ज्योति को बुलाओ—फिर धीरे-धीरे तुम उस प्रकाश में हर चीज़ को पहचानना शुरू कर दोगे। यहाँ तक कि अगर एक बार में यह चीज़ पूरी तरह से नहीं भी की जा सके लेकिन तुम्हारे निर्णय तथा तुम्हारी भावनाएँ अधिक स्पष्ट और अधिक निश्चित हो जायेंगी और इन चीज़ों के बारे में तुम्हारे अन्दर सही चेतना प्रतिष्ठित हो जायेगी।

यदि साधक पूरी तरह से श्रीमाँ की शक्ति तथा अहंकारी और अज्ञानी शक्तियों में भेद नहीं कर सकता तथा उन्हें अस्वीकार नहीं कर सकता, तब उसकी क्या स्थिति होगी?

इन सभी प्रश्नों का उत्तर मैंने दे दिया है। एक ही बार में तुम पूरी तरह से न उनमें अन्तर कर सकते हो न उन्हें अस्वीकार ही कर सकते हो। एक ही चीज़ अनिवार्य है कि तुम सच्चाई से तब तक प्रयत्न करते रहो जब तक कि तुम्हें पूर्ण सफलता न मिले जाये। जब तक पूर्ण सच्चाई रहेगी, 'भागवत कृपा' भी बनी रहेगी और हर पल पथ पर तुम्हारी सहायता करेगी।

आपने लिखा है कि साधना में अहंकार एक मुख्य बाधा है, साथ ही साथ यह भी कहा है कि "मन अपने विचारों से चिपका रहता है, प्राण सच्चे समर्पण के बदले अपनी ही कामनाओं को प्रधानता देता है तथा शरीर अपनी ही आदतों का पालन करता है।" "सच्चे समर्पण" से आपका क्या मतलब है तथा साधक को इसका पूरा-पूरा पता कब लगता है?

जब वह इन सभी चीज़ों से छुटकारा पा ले—अपने विचारों की जगह ऊपर से आने वाले 'ज्ञान' को, अपनी कामनाओं की जगह 'भागवत' इच्छा को, अपनी शारीरिक आदतों की जगह 'सत्य' की गतिविधियों को स्वीकार कर ले—और परिणामतः पूरी तरह से भगवान् के लिए जी सके।

मुझे यह कैसे पता चलेगा कि श्रीमाँ की 'इच्छा' क्या है? अगर किसी चीज़ को करने में मुझे असुविधा महसूस हो तो क्या इसका मतलब यह है कि यह श्रीमाँ की 'इच्छा' के विरुद्ध है?

तुम्हारी सुविधा या असुविधा श्रीमाँ की 'इच्छा' का सूचक कैसे हो सकती है? तुम्हें अपने चैत्य बोध को विकसित करना चाहिये जो सत्य को असत्य से तथा दिव्य को अदिव्य से अलग कर सके।

साधक में रूपान्तर कब शुरू होता है?

यह निश्चित नहीं है कि 'कब'?

साधक को यह कैसे पता चलता है कि उसके अन्दर रूपान्तर चल रहा है?

अगर वह हो रहा है तो उसे अनुभव होगा। कैसे का कोई सवाल ही नहीं है।

जब प्रकृति को शुद्ध किया जाता है तो क्या यह रूपान्तर का संकेत है?

शुद्धीकरण से रूपान्तर सम्भव हो सकता है।

शुद्धीकरण का सही अर्थ क्या है?

कामना, अहंकार, मिथ्यात्व तथा अज्ञान से शुद्धीकरण।

पूर्ण शुद्धीकरण के बिना उच्चतम 'सत्य' की आंशिक उपलब्धि को पाना क्या सम्भव है?

हाँ है।

यह किस तरीक़े से सम्भव है?

भगवान् की ओर उद्घाटित होकर।

क्या यह सच है कि साधक अपने-आपको भगवान् की ओर खोलने तथा अपना रूपान्तर करने की प्रगति के अनुपात में ही भागवत कृपा तथा सत्य को प्राप्त करता है?

जितनी अधिक वह प्रगति करता है, 'सत्य' की शक्ति उतनी ही अधिक उस

पर होती है—जितना अधिक वह रूपान्तरित होता है, उतना अधिक वह 'भागवत' प्रभाव को अनुभव कर सकता है।

यदि साधक अपनी निम्न प्रकृति से छुटकारा पा ले तो क्या उसे पूर्ण रूपान्तर की उपलब्धि होगी?

यदि वह अपनी निम्न प्रकृति से छुटकारा पाता है तो इसका अर्थ है, अज्ञान (अहंकार, कामना इत्यादि) से छुटकारा पाना; तो, आवश्यक रूप से यह पूर्ण रूपान्तर होगा।

व्यक्ति अपने स्वभाव के उन दोषों के प्रति कैसे सचेतन हो सकता है जो छिपे हुए होते हैं तथा परिवर्तन में बाधा बन जाते हैं? इन दोषों को व्यक्ति रूपान्तर के लिए भगवान् को कैसे अर्पित कर सकता है?

व्यक्ति को जागरूक रहना चाहिये, उन पर निगरानी रखनी चाहिये और साथ ही 'श्रीमाँ के प्रकाश' को नीचे बुलाना चाहिये ताकि मन के पीछे जो कुछ भी छिपा हुआ है वह दिखायी दे जाये।

तुम्हें बस पूरी तरह से सच्चा-निष्कपट होना चाहिये और तुम्हें शुद्धि के लिए अभीप्सा करनी चाहिये तथा तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी ग़लत है उसका त्याग करना चाहिये। तब 'भागवत शक्ति' अपना कार्य करेगी तथा बाक़ी सब कुछ कर देगी।

यह सरल और सच्चा रास्ता है।

जब साधक विवेक के द्वारा अपनी निम्न प्रकृति को श्रीमाँ की ओर मोड़ देता है तो क्या इसे रूपान्तर कहा जा सकता है?

नहीं, निश्चित रूप से नहीं। यह केवल रूपान्तर के लिए एक शर्त है।

पर्याप्त विवेक के अभाव के कारण यदि साधक अपनी निम्न प्रकृति को पूरी तरह से श्रीमाँ की ओर नहीं मोड़ सके तो क्या उसका

रूपान्तर करने के लिए 'श्रीमाँ की शक्ति' को बहुत मुश्किल होगी?

अगर उसका विवेक निरन्तर और सच्चा है तथा वह पूरी तरह से मुड़ा हुआ है तो उसका रूपान्तर बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ सकता है।

क्या यह सम्भव नहीं है कि अपनी तरफ़ से किसी भी व्यक्तिगत प्रयास के बिना, श्रीमाँ की कृपा से, साधक की प्रकृति को उनकी ओर मोड़ा जा सके और उसका रूपान्तरण हो जाये?

यदि कोई व्यक्तिगत प्रयास नहीं हो, यदि साधक बहुत अकर्मण्य तथा प्रयास करने के लिए तामसिक हो तो 'कृपा' क्यों काम करे भला?

क्या कोई साधक जो आंशिक रूप से रूपान्तरित हो जाता है, उच्चतम सत्य तक नहीं पहुँच सकता?

इसकी सम्भावना होती है।

क्या यह सच है कि आध्यात्मिक अनुभूतियाँ पाये बिना रूपान्तर सम्भव नहीं है?

कुछ बदलाव आ सकता है—सारी सत्ता का रूपान्तर नहीं। आध्यात्मिक अनुभूतियों के बिना यह कैसे हो सकता है भला?

जब साधक को आध्यात्मिक सत्य-सूचक स्वप्न आते हैं तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी प्रकृति में बदलाव आ रहा है?

यह ज़रूरी नहीं है। वह सूचित करता है कि साधारण व्यक्ति की अपेक्षा वह ज़्यादा सचेतन है पर सपने प्रकृति को बदल नहीं सकते।

—श्रीअरविन्द

ये सभी अपने हैं

(हमारे शिक्षाकेन्द्र की हिन्दी तथा संस्कृत की अध्यापिका का प्रतीकात्मक लेख प्रस्तुत है—सं.)

आइये, आज आपका अपने कुछ समीपी पड़ोसियों से परिचय करवाऊँ! कहने को ये सब हमारे बहुत घनिष्ठ लोगों में से हैं, पर यह नहीं कह सकते कि ये सभी इष्ट अर्थात् प्रिय भी हैं।

सबसे पहले मिलिये इस आलीशान बंगले में राजसी ठाट-बाट से रहने वाले प्राणसिंह जी से। अरे-अरे, प्राण साहब का नाम सुनते ही आप सोचने लगे कि मैं फ़िल्मी दुनिया के प्रसिद्ध खलनायक अभिनेता प्राण जी से मिलवाने आपको लेकर बम्बई जा पहुँची! नहीं! नहीं, ये वे प्राण साहब नहीं हैं, हालाँकि हमनाम ज़रूर हैं। ये किसी फ़िल्मी दुनिया के कलाकार नहीं हैं; पर हमारे मोहल्ले के बड़े जाने-माने रसिक और रंगीली तबियत के जोशीले क़िस्म के व्यक्ति हैं। ज़मींदाराना शौक़ से रहते हैं। आलीशान बंगले के आगे-पीछे बाग़-बग़ीचे हैं। ख़ूबसूरत रंग-बिरंगे फूलों की बहार रहती है। नौकर-चाकर, गाड़ी-घोड़े, ख़ूब भरा-पूरा परिवार है इनका। अपने पाँच घोड़ों के रथ पर सवारी का ख़ूब शौक़ है इन्हें! अपनी शौक़ीनी के नशे में कई बार तो अँधाधुन्ध घोड़ों को दौड़ाते हैं और किस-किस को घायल कर चुके हैं बस पूछिये मत! पर आज तक समझ नहीं पाये कि सँभाल कर चलाना सीखें। किसी की नहीं सुनते! धुनी हैं धुनी! उनकी उमंगों का कोई ठिकाना नहीं। कई शौक़ हैं इनके—गाना-बजाना, घूमना-फिरना, राग-रंग की महफ़िलें करना, फ़िल्में देखना, दावतें उड़ाना! मस्ती छायी रहती है इनके दिमाग़ पर! सबके साथ हमउम्र बन कर घुलमिल जाते हैं, बच्चा-बच्चा इनको पसन्द करता है। पर, पल-भर भी चैन से शान्त नहीं रह पाते। एक दिन एक पड़ोसी के यहाँ ध्यान का कार्यक्रम था। पड़ोसी होने के नाते निमन्त्रण तो इन्हें भी मिला, पर ये कहाँ पल-भर भी चैन से बैठ पाये! ध्यान शुरू हुआ नहीं कि किसी न किसी हरकत से सबका ध्यान भंग ही करते रहे! बड़े चञ्चल हैं, हद से ज़्यादा चुलबुले!

इनकी पत्नी हैं श्रीमती कम्मो देवी। नाम तो उनका कामना देवी है, पर सभी उन्हें कम्मो जी के नाम से जानते हैं। कम्मो जी अपने पतिदेव

से ज़रा-भी कम नहीं हैं। इन्हें सारा दिन बनने-सँवरने से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती। सुबह उठने के साथ ही इनकी शौक़भरी फ़रमाइशें शुरू हो जाती हैं। कभी कुछ चाहिये तो कभी कुछ! रोज़ नये-नये विज्ञापनों से उचकता इनका मन चीज़ों की तरफ़ लपकता ही रहता है। आज ये क्रीम चाहिये तो कल अमुक पाउडर! किसी से त्वचा मुलायम बनेगी तो कोई बालों को सुन्दर बनाने वाला तेल होगा! कोई अन्त नहीं इनकी माँग और चाहत का! पर, उतनी ही जल्दी किसी भी चीज़ से मन उतर भी जाता है और फिर वह घर का "कबाड़" बन कर रह जाती है। इनके बाल-बच्चे भी इन दोनों की तरह बिगड़ैल और मनमौजी ही हैं।

आइये, अपने दूसरे पड़ोसी से मिलवाऊँ। प्राण साहब के बंगले से ज़रा आगे बढ़ते ही जो पीला-सा मकान है, उसी में रहते हैं, हमारे मानस भाई। ये शान्त-गम्भीर प्रकृति के एकान्तप्रेमी सज्जन हैं। हो-हुल्लड़ कम पसन्द करते हैं। दिन-भर पुस्तकों में ही घुसे रहते हैं। अच्छा-ख़ासा पुस्तकालय है इनके घर में। काफ़ी विचारवान् और स्वाध्याय-प्रेमी हैं, पर एक ही गड़बड़ है कि ये अपने से ज़्यादा अक़्लमन्द किसी को नहीं समझते। अपने ज्ञान की पताका ऐसे उड़ाते हैं जैसे कोई बच्चा कनकौए उड़ाता है। कभी-कभी ऐसे ज्ञान बघारते हैं मानों महर्षि अगत्स्य की तरह इन्होंने भी 'ज्ञान' का सागर पी डाला हो। वैसे इन्हें बड़ी अच्छी-अच्छी बातों का ज्ञान भी ख़ूब है, पर क्या मजाल है कि इनकी गर्वीली गर्दन किसी के सामने इंच-भर भी झुक जाये! ज्ञानी, पर भयंकर अभिमानी!!

कुछ ही दिन पहले प्राणसिंह जी से इनकी कस कर झड़प हो गयी। हुआ यह कि प्राणसिंह जी एक रंगीली-सी फ़िल्म देख कर आये थे और उसी का रस मोहल्ले भर के बच्चों को चटाते फिर रहे थे। बच्चों को तो इन सब चीज़ों में मज़ा आता ही है। सबने प्राण साहब के पीछे-पीछे उसी फ़िल्म के गीतों की धुनों को गुनगुनाना और सीटियों पर बजाना शुरू कर दिया। जिधर से निकलो कोई न कोई सीटी बजाता बच्चा रास्ते में पड़ ही जाता। यह देख कर मानस भाई का दिमाग़ एकदम गरम हो गया। एक दिन जैसे ही प्राण साहब से उनका आमना-सामना हुआ कि वे उबल पड़े—"ये क्या बदतमीज़ी हो रही है! ये भी कोई तरीक़ा है कि बच्चे सारे दिन फ़िल्मी धुन सीटी पर बजाते फिरते हैं? इनमें कोई संस्कार नहीं, कोई

शरम-लिहाज़ नहीं! बड़ा देखा न छोटा, घर देखा न बाहर, आवारों की तरह मुँह के सामने सीटियाँ बजाते निकल जाते हैं! प्राणसिंह जी, आपने ही बच्चों में यह बदतमीज़ी फैला रखी है। न आप ख़ुद अनुशासन व तमीज़ जानते हैं न बच्चों को सिखाते हैं। सारे मोहल्ले को तबाह किये जा रहे हैं!"

प्राणसिंह जी भी कम न थे। रंगीले मिज़ाज के ज़रूर थे, पर थे बड़े ग़ुस्सैल! किसी की हेकड़ी सहन नहीं होती थी। ऐसी बदनामी, ऐसी लांछना! सहन न हुई। पलट कर मानस भाई को बुरा-भला सुनाना शुरू कर दिया। बात बढ़ गयी। तभी घर में से मेधा दीदी उनकी तू-तू मैं-मैं सुन कर भागी आईं और उनका बीच-बचाव किया। मेधा दीदी मानस भाई की बड़ी बहन हैं और उन्हीं के साथ रहती हैं। उनका सम्मान सभी करते हैं। उन्होंने दोनों को शान्त किया। हालाँकि कई सप्ताह तक दोनों एकदम छत्तीस बने रहे, पर धीरे-धीरे अपनी-अपनी दिनचर्या में शान्ति से रहने लगे। जब मानस भाई का ग़ुस्सा ज़रा शान्त हुआ तो मेधा दीदी ने समझाया—"देखो भैया, यहाँ तुम्हारी ठेकेदारी थोड़े ही है कि सब तुम्हारे चलाये ही चलेंगे! हरेक की अपनी मर्ज़ी, अपनी समझ होती है।" बड़ी तसल्ली से उन्होंने मानस भाई को समझाया-बुझाया। मेधा दीदी सचमुच बड़ी समझदारी से हर परिस्थिति को ऐसे सँभालती हैं कि किसी को बुरा नहीं लगता। उनकी समझदारी के सामने सब छोटे पड़ जाते हैं। वे हमेशा सबको सही रास्ता दिखाती हैं।

आइये, अब समीप के एक और पड़ोसी से मिलने चलें। ये हैं श्रीमान् 'स'। इनका पूरा नाम अभी नहीं बाद में बताऊँगी। बड़े अजीब सज्जन हैं ये! हर वक़्त इसी ताक में घूमते रहते हैं कि कब किसको धर पकड़कर उसके यहाँ घुस जायें। किसी से उनकी घनिष्ठता नहीं पर सबके यहाँ घुसने की कोशिश करते हैं। उन्हें शायद ही कोई पसन्द करता है पर चाहे जब, बिना निमन्त्रण के ही, चाहे जिसके यहाँ टपक पड़ते हैं। यद्यपि मैं हमेशा इनसे कतराती हूँ, पर ये पीछा नहीं छोड़ते। एक दिन श्रीमान् 'स' पहुँच गये मेरे घर और बड़े अधिकार के साथ डाँटते हुए बोले—"अरे, कल शाम तुम घर की छत पर खुले में क्यों बैठी थीं?" मैंने बड़ी सहजता से उत्तर दिया—"हाँ, ज़रा ठण्डी हवा का मज़ा ले रही थी।" अपनी शक्की निगाहों को और भी गहरी बनाते हुए गम्भीर स्वर में बोले—"क्या कहा, ठण्डी हवा का आनन्द! दिमाग़ तो ठीक है न तुम्हारा? अभी चार दिन पहले तेज़

बुख़ार चढ़ा था तुम्हें, और आज ठण्डी हवा में बैठने चलीं! मालूम नहीं, बुख़ार के बाद ऐसी ठण्डी हवा कितना नुकसान कर सकती है?" मैंने पूछा—"क्यों? मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ, ठीक ही तो हूँ मैं!" तपाक से बोले—"ख़बरदार, फिर से ऐसी नासमझी मत करना। देख रहा हूँ तुम काफ़ी नासमझ हो। आज से मैं तुम्हारी निगरानी रखूँगा।"... और इस तरह ये श्रीमान् 'स' जाने-अनजाने किसी के भी ऊपर हावी होने लगते हैं। अगर किसी को छींक भी आयी तो अपने घर की खिड़की खोल कर हाँक लगा देते हैं—"अरे बिटिया, तुम छींक रही हो! सँभाल कर! गला-वला लपेट कर रखना! सिर पर ठण्ड लग गयी होगी। और हाँ, ठण्डे पानी में हाथ मत डालना, बुख़ार आ जायेगा।" अगर किसी की आँखें ज़रा थकी और लाल-सी दिखीं कि ये कहना शुरू कर देते हैं—"बेटा, जल्दी से डॉक्टर के पास जाओ, तुम्हें कहीं बुख़ार तो नहीं!" छोटे-छोटे बच्चों के मन में भी डर बैठाते रहते हैं। हमेशा किसी अनर्थ की आशंका से दूसरे को भरते रहना ही इनका पेशा है। किसी को चैन से मस्त नहीं रहने देते।

एक दिन तो हद ही हो गयी। मैं रात को अपने कमरे में बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक लगा कि कोई मेरे कमरे में घुस आया। घबराकर मैंने पीछे घूमकर देखा। कोई न था। पीछे की खिड़की खुली थी, उसी से शायद हवा का झोंका भीतर आया होगा जिससे किसी के होने का आभास-सा हुआ था। पर यह वहम अभी पूरी तरह मन से गया नहीं था। मैंने उठ कर सारे घर में चक्कर लगाया, कहीं कोई नहीं था। आश्वस्त होकर बिस्तर पर बैठ कर फिर से किताब पढ़ने लगी। न जाने क्यों मन में आशंका अभी तक बनी हुई थी। अचानक पीछे की खिड़की से हलकी-सी फुसफुसाहट सुनाई दी—"बिटिया, घर का दरवाज़ा तो ठीक से बन्द है न? आजकल बहुत चोरी-वोरी हो रही है, सँभाल कर सोना।" श्रीमान् 'स' की ऐसी हिदायतें चैन से सोने भी नहीं देतीं! पूरी रात मैं सो न पायी।

ऐसे अजीबोग़रीब पड़ोसियों के बीच ही एक छोटे से मकान में रहती हैं आस्था दीदी। ये इतनी सरल, निश्छल और मिठास-भरी हैं कि पूछो मत। दिन में एक बार भी इनसे मुलाकात हो जाती है तो आनन्द और प्रेरणा से भर देती हैं। यथा नाम तथा गुण। बहुत पवित्र और भक्तिपूर्ण भावों से भरी हुई स्वयं मूर्तिमान् पूजा-सी लगती हैं। जब भी उन्हें श्रीमान् 'स' के

कारनामे सुनाओ तो खिलखिला कर हँस पड़ती हैं। उस खुली धूप-सी हँसी में सारा डर धुल-पुँछ कर साफ़ हो जाता है। उनके क्षण-भर के सम्पर्क से भी मन को बड़ा बल मिलता है। और, मिलती है असीम प्रसन्नता।

शायद अब तक आप समझ ही गये होंगे कि यह मोहल्ला कौन-सा है जिसमें इतनी तरह के लोग रहते हैं। यह है हमारा अपना ही व्यक्तित्व, हम ख़ुद! इसमें प्राणसिंह जी हैं हमारे ही प्राणों का उच्छृंखल उमंगभरा उछाल जो हमें पागल बनाये रहता है। और, उनके बिगड़े घोड़े हैं हमारी असंयत इन्द्रियाँ जिन पर सवार होकर वे सैर करते फिरते हैं। उनकी पत्नी कम्मो देवी हैं हमारी कामनाएँ जो कभी तृप्त नहीं होतीं और हमें भगाती रहती हैं। हमारे ही अन्दर विचारवान् गम्भीर मन का भी निवास है, वे ही हैं मानस भाई। अपने ज्ञान में गर्वोन्नत बना रहना उनका स्वभाव है। उनकी बहन हैं मेधा दीदी अर्थात् हमारी बुद्धि जो हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती हैं। और, हमारे ही इस व्यक्तित्व में घुस कर हमें दुर्बल बनाने वाले श्रीमान् 'स' हैं हमारे अन्दर उठने वाले तरह-तरह के सन्देह जो हमारे मन को कमज़ोर बनाते रहते हैं। हमारे इसी व्यक्तित्व में रहने वाली आस्था दीदी हैं प्यार और विश्वास की पूजा-जैसी पवित्र मूर्ति हमारी श्रद्धा, हमारी आस्था जो हमें हर कमज़ोरी और भय से मुक्त करके भगवान् की ओर ले जाती है। और उनके सम्पर्क से हमारे मन में सुख और आनन्द भर जाता है। अपनी इसी आस्था का हाथ पकड़ कर हम प्रकाश के पथ पर, आनन्द के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

कठोपनिषद् में मानव-जीवन की इस यात्रा का बहुत सुन्दर रूपक आता है : "आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।" (१.३.३)
"इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।" (१.३.४)
"विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः परमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम्।।" (१.३.९)

—यह प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपनी जीवन-यात्रा में किस पड़ोसी का हाथ पकड़ कर उसके साथ आगे बढ़ता है।

—अर्चना माहेश्वरी

सबकी सुध-बुध हर ली...

"यहाँ से वैकुण्ठ कितनी दूर है?" अब तो राहगीरों से भी राजा यही प्रश्न पूछने लगे।

सप्ताह पहले तञ्जाऊर प्रदेश के राजा ने सपने में वैकुण्ठ के दर्शन किये थे और उसी क्षण से उनके हृदय में जाग्रत् अवस्था में वैकुण्ठ देखने की अभिलाषा ने घर कर लिया। अगले दिन सभा में घोषणा करवा दी, "जो भी मुझे वैकुण्ठ जाने का मार्ग बतला देगा उसे मैं अपना सारा राजपाट सौंप दूँगा।" क्या मन्त्री, क्या विद्वान् और क्या सभासद्, सभी अवाक्, स्तब्ध, किंकर्तव्यविमूढ़ से रह गये। सभा में खुसुर-पुसुर चलने लगी, आँख के संकेतों से बातें होने लगीं, "क्या हमारे महाराज का दिमाग़ चल गया?" "कहीं मृत्यु का पूर्वाभास तो नहीं पा लिया इन्होंने!" "राजपाट छोड़-छाड़ कर वैरागी बनना चाह रहे हैं शायद", इत्यादि कितने ही प्रश्न सभासदों की भृकुटियों पर तैरने लगे। अन्त में राजा के एक चहेते मन्त्री ने साहस जुटा कर कहा—"राजन्, सशरीर किसने देखा है विष्णु भगवान् के धाम वैकुण्ठ को? कहते हैं कि अस्सी हज़ार योजन के घेरे में फैले वैकुण्ठधाम के भवन हीरे-जवाहरात के हैं जिनकी चकाचौंध से देवता भी चुँधिया जाते हैं। वहाँ के कण-कण से ऐसा पवित्र प्रकाश फूटता है कि कोई मानव तो सशरीर उसके पास जाने का स्वप्न तक नहीं ले सकता।"

"लेकिन मेरे तो स्वप्न में ठीक इसी तरह का वैकुण्ठ उतरा न, जाइये, सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दीजिये कि जो सशरीर वैकुण्ठ जाने की मेरी यह इच्छा पूरी कर देगा उसे न केवल मैं राजपाट दे दूँगा बल्कि उसका क्रीत दास बन जाऊँगा।"

राजा की ऐसी प्रबल उत्कण्ठा के सामने सब चकित रह गये। अब महाराज का न राज्य में मन लगता न प्रासाद में, न प्रमोद-वन उन्हें अपनी ओर खींचता और न पटरानी का मधुर आलाप उनको मनःशान्ति देता। राजा की ऐसी हालत देख सभी चिन्तित हो उठे। आख़िर महामन्त्री, ब्राह्मण, विद्वान् सबने मिल कर यही निश्चय किया कि नगरसेठ पेरियदास की शरण में जाया जाये, शायद वे कुछ हल निकाल सकें।

शिवजी के परम भक्त धनाढ्य पेरियदास थे सचमुच व्यापारी लेकिन

व्यवसाय के मोह ने उन्हें कभी न बाँधा, वे तो अपने आराध्य देव शिवजी के चरणों से बँधे थे। उठते-बैठते, सोते-जागते, व्यापार करते हुए—अर्थात् हर पल उनके सामने अपने इष्टदेव की मूर्ति नृत्य करती रहती और वे उनकी प्रशंसा में भजन गा-गाकर, सर्वत्र सुनाते। अन्ततः पेरियदास को राजसभा में बुलाया गया। जब राजा ने उनसे वही प्रश्न पूछा कि वैकुण्ठ यहाँ से कितनी दूर है तो वे बोल उठे—"राजन्, इसके बारे में तो मैंने कभी सोचा नहीं, लेकिन मुझे विश्वास है कि वैकुण्ठ ज़रूर हमारी श्रवणसीमा के अन्दर है। तभी तो देवतागण भक्त की करुण पुकार सुन झट उतर पड़ते हैं उसकी रक्षा के लिए। गज ने आर्त हो प्रभु को पुकारा और उनके रक्षा-चक्र ने आकर मगर के प्राण हर अपने भक्त को बचाया। द्रौपदी के करुण क्रन्दन से अवतार श्रीकृष्ण उनकी लाज रखने के लिए दौड़े चले आये। भक्त की सच्ची पुकार पर भगवान् का क्षण-भर में पृथ्वी पर उतर आना तो इसी बात का सूचक है न कि उनका धाम वैकुण्ठ हमारी धरा से बहुत दूर नहीं है। इससे ज़्यादा तो मैं जानता नहीं राजन्।"

पेरियदास के वचन सुन कर मन्त्रिगण, सभासद् सभी ने सन्तोष के साथ स्वीकृति में सिर हिलाया। राजा को इतने दिनों के बाद कुछ सन्तोष तो मिला, लेकिन अपनी पहेली का पूरा समाधान तो उन्हें मिला नहीं। और जब बहुत सारा धन, हीरे-जवाहरात उन्होंने पेरियदास को पुरस्कार-स्वरूप दिये तो वे बोल उठे—"राजन्, धन-दौलत की न मुझे चाह है न आवश्यकता, आप इस धन को ग़रीबों में बाँट दीजिये।"

दम्भी राजा के अहंकार को ठेस पहुँची। ग़ुस्से का घूँट पीकर बोले—"ठीक है महानुभाव, आप समृद्ध भी हैं और कवि भी; धन की आपको आवश्यकता नहीं, लेकिन मैं आपके कवित्व से लाभान्वित होना चाहूँगा। मैं आपको राजकवि का पद देता हूँ, मेरी प्रशंसा में कविताएँ रच कर मुझे भी अमर बना कर देवताओं की श्रेणी में बिठा दीजिये। शायद वैकुण्ठधाम मुझे इसी रूप में प्राप्त हो जाये।"

पेरियदास विनीत-स्वर में बोले—"राजन्, मेरा नाम ही यह दर्शाता है कि भगवान् के सिवाय और किसी की दासता मैं स्वीकार नहीं करता। और फिर मैंने तो अपना कवित्व अमरों को न्योछावर कर दिया है, किसी मर्त्य की चाकरी करना मेरे बस की बात नहीं।"

इतने बड़े राजा का इतना घोर अपमान! राजा का अहंकार चिंघाड़ उठा। उनकी आँखों की लाली से सारा दरबार थरथराने लगा, स्वस्थ था तो बस एक पेरियदास।

राजसभा में बिजली-सी गिराती महाराज की आवाज़ कड़क उठी—"इतना दम्भ रे नीच कवि! डाल दो इसे कालकोठरी में, मृत्यु से पहले अमर्त्यों के गीत गाने दो इसे।"

पेरियदास मुस्कुरा उठे। उस मुस्कान ने राजा को डँस लिया, अपना आपा खो बैठा वह। उसे न केवल कालकोठरी का वास बल्कि अनेकानेक यन्त्रणाएँ देने का हुकुम दे दिया राजा ने।

लेकिन राजा क्या जानता था कि उस गृहस्थ-तपस्वी के तेजोबल के सामने कोई यन्त्रणा टिक ही नहीं सकती थी। उसे शेर के पिंजड़े में डाला गया तो शेर दुम दबा कर भीगी बिल्ली बन बैठा, तेज़ नोंकवाले भाले उसके शरीर को गुदगुदा भर पाये, विष तो उसकी ज़ुबान पर लगते ही अपना विषत्व खो बैठा।

"राजन्, हम हार गये। थक गये इस पर अत्याचार करते-करते। हमारा हर वार इस पर फूल की तरह बरसता है।" मन्त्रियों ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

राजा के अहंकार का भूत उसके सिर पर चढ़ कर बोला—"मृत्युदण्ड! कल सवेरे इसे फाँसी पर लटकाया जायेगा।"

सारी सभा स्तब्ध रह गयी। आख़िर क्या दोष था पेरियदास का। किन्तु किसी के दो सिर तो थे नहीं कि राजा के सामने मुँह खोलने का साहस करता। पेरियदास फिर भी मन्द-मन्द मुस्कुराते रहे।

और देखते-न-देखते तञ्जाऊर प्रदेश में प्रलय-सा छा गया, धरती डोलने लगी, आकाश फटने को हो गया। क्षण-भर में चारों तरफ़ हाहाकार मच गया। भय से सूखे पत्ते की तरह काँपते हुए राजा ने प्रभु की टेर लगायी।

शिव का ताण्डव थम गया। और प्रकट हो गये जटाजूटधारी, प्रलयंकर, शिवशंकर।

उनका रूप देख राजा की आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। उनका शरीर लहू-लुहान था मानों किसी ने भाले से बींध दिया हो, गरलपान करने वाले शिवजी का सामान्य पार्थिव विष क्या बिगाड़ लेता। सारे प्रदेश

को थरथराती उनकी वाणी गूँज उठी—"सशरीर वैकुण्ठ जाने की इच्छा रखने वाले राजन्, अपने दुष्कर्मों से तुम नरक में भी स्थान न पा सकोगे। तुम्हारी वैकुण्ठ जाने की ऐसी प्रबल अभीप्सा देख कर ही मैंने अपने इस भक्त को तुम्हारी परीक्षा के लिए भेजा, लेकिन अपने-आपको राजराजेश्वर मानने वाले तुम अहंकार की गद्दी छोड़ना ही नहीं चाहते, यहाँ तक कि अपने गर्व में डूब कर तुमने मेरे शरीर तक को लहू-लुहान कर दिया। जानते हो, मैं और मेरे भक्त एकशरीरी हैं। राजन्, इस अहं के रथ पर चढ़ कर तुम वैकुण्ठ तो क्या, इस धरती पर अपनी प्रजा के हृदय में भी प्रवेश नहीं कर सकते।"

अपने आराध्य देव के दर्शन पा राजा का सारा गर्व आँसुओं में बह गया। क्षमा-याचना के लिए हाथ जुड़े नहीं कि शिवजी बोल उठे—"जाओ, क्षमा चाहते हो तो मेरे भक्त पेरियदास की शरण में जाओ, भक्त के सामने भगवान् भी निस्सहाय हो जाता है।"

पेरियदास ने राजा को पैरों पर गिरने से पहले ही अपने अंक में भर लिया। शिवजी का रक्तरञ्जित शरीर स्वस्थ हो गया। राजा के कुछ कहने के पहले ही पेरियदास बोल उठे—"राजन्, ऋणी हूँ मैं आपका, आपने हम सबको कैलाशवासी शिवजी के साक्षात् दर्शन करवा दिये, मैं तो अब तक सोचता था कि वैकुण्ठ हमारी श्रवणसीमा के अन्दर है, लेकिन आज पता लगा कि वैकुण्ठ स्वयं हमारे अन्दर, हम सबके अन्दर स्थित है। अहंकार, क्रोध, मद, मोह के रथ से उतर कर भक्ति और श्रद्धारूपी स्वर्ण रथ पर सवार हो अगर हम अपने हृत्प्रदेश में प्रवेश करें तो वहाँ हम ऐसा वैकुण्ठ पायेंगे जो शायद देवताओं को भी दुर्लभ हो!"

भगवान् शिव भी मुस्कुरा उठे। डमरू से निकलती आनन्द-लहरी की तानों ने सबकी सुध-बुध हर ली। जब आँखें खुलीं तो वहाँ बस आकाररहित आनन्द ही आनन्द फैला देखा।

राजा और पेरियदास दोनों ही आलिंगनबद्ध मूक वाणी में परस्पर कह रहे थे—"मैं तुम्हारा ऋणी हूँ!"

'पुरोधा', जून २००७ से —वन्दना

प्रभु के प्रति निष्ठावान् बनो और तुम सतत शान्ति पा लोगे। —श्रीमाँ

भगवान् के साथ चैत्य में घनिष्ठता
पूर्ण रूप से विकसित चैत्य की सामान्य अवस्था

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

तर्क-बुद्धि के राज्य का अन्त केवल तभी होना चाहिये जब चैत्य का विधान आ जाये, जो भागवत 'संकल्प' को अभिव्यक्त करता है।

—श्रीमाँ

With best compliments of:
DEORAH SEVA NIDHI
(Founder Trustee: Late Shri S.L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700019

Date of Publication: **1st December 2019**
(Monthly) Rs. 30

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 4

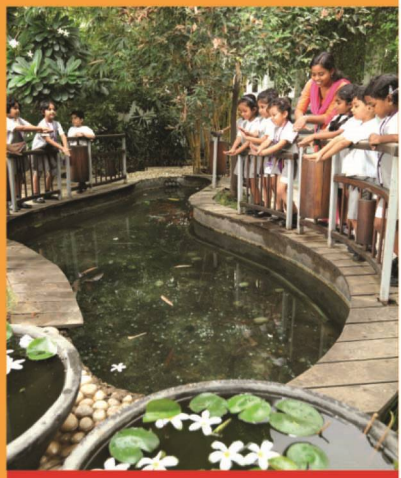

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2018-19

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363